गोविन्द रामायण

प्रथम संस्करण, १९६९

मूल्य आठ रुपये

प्रकाशक
सन्मार्ग प्रकाशन
१६ यू० बी० बंग्लो रोड, दिल्ली-७

मुद्रक : भारत मुद्रणालय, दिल्ली-३२

दो शब्द

प्रस्तुत प्रबन्ध मेरे जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय की एम० ए० (हिन्दी) की परीक्षा के स्वीकृत विशेष प्रबन्ध का ही परिवर्धित रूप है।

भारतीय इतिहास के पृष्ठों में आध्यात्मिक नेता, राजनीतिकुशल योद्धा, राष्ट्रनिर्माता, कुशल कवि को व्यापक रूप सफलता से निर्वाह करने वाले गुरु गोविन्दसिंह के व्यक्तित्व ने मुझे बहुत पहले से प्रभावित कर रखा था, अतः एम० ए० (उत्तरार्द्ध) में विशेष प्रबन्ध हेतु विषय चयन करने का प्रश्न जब उपस्थित हुआ तो अनायास ही मैंने गुरु गोविन्दसिंह कृत 'गोविन्द रामायण' पर प्रबन्ध लिखने का विचार किया। श्रीराम का रूप भारतीय संस्कृति के शील, शक्ति व सौंदर्य का समन्वित रूप है। श्रीराम का पावन चरित्र अनेक कवियों ने मुक्त कंठ से गाया है। उनके चरित्र ने भारतीयता में नवीन प्राणों का संचार किया है। गुरु गोविन्द ने भी अपने समय की विकट परिस्थितियों के बीच श्रीराम के चरित्र द्वारा जनता को जगाने का सफल प्रयास किया है, गुरुजी ने श्रीराम के दुष्ट दल-दमन के रूप को ही अधिक मान्यता दी है, जो उनके युग की परिस्थितियों को देखते हुए उचित ही है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में साहित्य रत्नमाला, २० धर्मकूप बनारस द्वारा प्रकाशित तथा श्री सन्त इन्द्रसिंह चक्रवर्ती द्वारा सम्पादित 'गोविन्द रामायण' की प्रबन्ध काव्य-कला के आधार पर आलोचना प्रस्तुत की गई है।

आदरणीय डॉ० रमाकुमार शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग जम्मू तथा काश्मीर विश्वविद्यालय, काश्मीर महल श्रीनगर के निर्देशन में मैंने प्रस्तुत प्रबन्ध लिखा था। इस प्रबन्ध को लिखने में प्रो० सवासिंहजी, पंजाबी विभाग, श्री प्रताप कालेज श्रीनगर ने मुझे समय-समय पर प्रोत्साहन दिया अतएव उनके प्रति आभार प्रदर्शित करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। इनके साथ ही श्री ओम-
...क तथा रेवरेंड फादर डॉ० कामिल बुल्केजी ने भी
... उचित निर्देशन भी करते रहे। उनको भी
... समझता हूँ। सिक्ख रिफ्रेन्स लायब्रेरी अमृतसर,

गुरु रामदास लायब्रेरी अमृतसर तथा पंजाब भाषा विभाग, पटियाल
कारियों ने मुझे जो सहायता दी है, उसे भूल नहीं सकता।

इस प्रबन्ध को प्रकाशित कराने के लिए मुझे डॉ॰ विद्यानाथ
प्राणनाथ त्रिवाठी, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय जम्मू तथा परम
आचार्य जगन्नाथ तिवारी अध्यक्ष हिन्दी विभाग जम्मू तथा कश्मी
विद्यालय, जम्मू ने उत्साह दिया, इन सभी की स्नेहदृष्टि मुझपर है।
आभार प्रदर्शन करने के लिए उचित शब्द मुझे कभी नहीं मिल स
रमेशकुमार शर्मा के निर्देशन के अभाव में तो मैं यह कार्य कभी भी
कर सकता था। अतएव उनके लिए जितना भी कहूं थोड़ा है। अन्त
विश्वास नील को क्या कहू, उसने तो सदैव ही मेरा शुभ चाहा है
को प्रशस्त करने में दिन-रात सहायक के रूप में मेरे साथ है।

जम्मू
२१-५-१९६६

क्रम

प्रथम प्रकरण

दशम नानक श्री गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज

जीवनी

सिक्ख सम्प्रदाय की स्थापना श्री गुरु नानक देव जी ने की। उनका समय सन् १४६६ से १५३६ था। तत्कालीन जनता अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों की गोद में सोई हुई थी। गुरु महाराज ने लोगों को जागृति का संदेश दिया। आपके उपदेश का मूल मंत्र आचरण की शुद्धता है। श्री गुरु की इस परम्परा को उनके पश्चात् श्री गुरु अंगददेव जी (सन् १५३६-५२), अमरदास जी (सन् १५५२-७४), तथा रामदास जी (सन् १५७४-८१) ने उन्हीं के सिद्धान्तानुसार आगे चलाया। पंचम गुरु अर्जुनदेव जी (सन् १५८१-१६०६) के समय तक गुरुओं का कार्य मात्र धार्मिक उपदेश ही रहा। परन्तु श्री गुरु अर्जुनदेव जी के बलिदान के पश्चात् जब श्री गुरु हरगोविन्द जी (सन् १६०६-४५) गद्दी पर बैठे तो आपने धर्म के साथ-साथ अत्याचार के विरुद्ध तलवार का सहारा भी लिया। इनके पश्चात् श्री गुरु हरिराय जी (सन् १६४५-६१) तथा श्री गुरु हरिकृष्ण जी (१६६१-६४) का काल शान्तिमय रहा, इसी से उनका कार्य धर्म-प्रचार ही रहा। नवें गुरु तेगबहादुर जी (सन् १६६४-७५) के समय में मुगल सम्राट औरंगजेब दिल्ली के सिंहासन पर था। उसके अत्याचारों की गाथा नित-नूतन आकृति में सज्जित होती थी, हिन्दू-जनता पिस रही थी। श्री गुरु तेगबहादुर जी ने अपने धर्म के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए अपनी आहुति दे दी। उनके पश्चात् श्री गुरु गोविन्दराय (बाद में गोविन्दसिंह) (सन् १६७५-१७०८) गद्दी पर बैठे। आप सिक्ख सम्प्रदाय के दशम तथा अन्तिम गुरु थे। सिक्ख धर्म के दशम गुरु श्री गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज हिन्दी के प्रतिभाशाली कवियों में अपना स्थान रखते हैं। आपके जीवन के सम्बन्ध में अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने यथेष्ट प्रकाश डाला है। सर्वश्री मैकालिफ, जोसेफ कनिंघम, इन्दुभूषण बनर्जी, तेजासिंह व गण्डासिंह आदि ने श्री गुरु महाराज के जीवन-वृत्त का विशेष उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त भाई सुखासिंह ने

में ही व्यतीत किये थे। बाल्यकाल मे आपका पालन-पोषण अत्यन्त वात्सल्य, स्नेह तथा प्रेमपूर्वक किया गया। माता के प्रेमपूर्ण व्यवहार ने आपके जीवन में मधुरता व मृदुता भर दी। बाल्यकाल मे ही उनकी वीरता, धर्म-प्रेम व कुशाग्र-बुद्धिमत्ता के उदाहरण मिलते हैं। बचपन मे वह ऐसे खेल खेला करते थे जिन्हें बड़े होने पर आपने अपने जीवन मे चरितार्थ किया। आप अपने साथियों को दो दलो मे विभाजित कर कृत्रिम युद्ध किया करते थे और स्वय उनके सरदार बनकर उन्हें युद्ध सिखाया करते थे। इसका अभ्यास वे झूठे बाण, तोप, खड्ग, गुलेल आदि बना कर किया करते थे।[1]

पटने मे मात्र हिन्दुओ ही के नहीं अपितु मुसलमानों के हृदय में भी बालक गोविन्द के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। इनमें नवाब रहीमबख्श और सैयद भीखन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[2]

कुछ समय बाद आपके पिता श्री गुरु तेग बहादुर जी ने आपको मखोवाल, काहलूर रियासत मे बुला भेजा। मार्ग मे वे काशी[3], प्रयाग, अयोध्या[4], लखनऊ, हरिद्वार[5], मथुरा और वृन्दावन आदि तीर्थों का पर्यटन करते हुए

---

१ तीर तुपक, निखग, सर, तोप तबर तरवार।
खजर गुरज कटार बर, सिखन देहि सुधार॥

—गुरु विलास, पृष्ठ ११।

२. जीवन कथा, श्री गुरु गोविन्दसिंह : प्रो० करतारसिंह, पृष्ठ ३५।

३. केतक मारग मैं दिन लाई, बाराणसी मधि पहुचे आई॥
बाराणसी नाम बह कहे, अनिक जन्म के किल बिस दहे॥

—गुरुविलास, पृष्ठ ७०।

४. दीनदयाल दयानिध साहिब आवत है इम कृत मुकीने।
श्री अवधेश के देखन में, निज आन धरे जगन्नाथ प्रवीने॥
औध पुरी सरजू तट पावन आन परा प्रभु पग पकज दीने।
आनन्द भयो दुख द्वन्द मिटे पुन तीरथ रात दीदार सु लीने॥

—गुरुविलास, पृष्ठ ६८।

५. केतक काल दयाल प्रभु हरिदुआर पुरी निज भीतर आये।
रूप अनूप पुरी स बिलोकत धन्न श्री मुख तीरथ गाये॥
देखत ही नर छोभ निवारे।
[illegible] पावे सिद्ध पाप निसादे॥

—गुरुविलास, पृष्ठ ७०।

लखनौर[1] पहुंचे। लखनौर में आपने कुछ दिन निवास किया। यहां भी अपने गुणों से आपने लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा। हिन्दू-मुसलमान दोनों ही समुदायों के व्यक्ति आपकी ओर आकर्षित हुए। मुसलमानों में पीर अरूफदीन का नाम प्रमुख है।[2] इसके बाद आगे चलकर आप कीर्तिपुर पहुंचे। कीर्तिपुर में ही पहले सप्तम गुरु श्री हरिराय जी रहा करते थे। कीर्तिपुर से चलकर आप अपने पिता के पास आनन्दपुर साहब पहुंचे।

श्री गोविन्दराय ६ वर्ष की अवस्था तक पटना में रहे थे और वहां पर उन्होंने पूर्वी हिन्दी को भली प्रकार से सीख लिया था, आनन्दपुर पहुंचने पर इनके पिता ने बालक की युद्ध-प्रिय प्रवृत्ति देखकर इनके लिए शस्त्र-विद्या सीखने का उचित प्रबन्ध कर दिया था। शस्त्र-विद्या के अतिरिक्त शास्त्र-विद्या सीखने का भी समुचित प्रबन्ध किया गया था। हिन्दी के अतिरिक्त आपने अन्य भाषाओं का भी सम्यक् अध्ययन किया, पंजाबी साहबचन्द ग्रन्थी से तथा फारसी की शिक्षा पीर मुहम्मद साहब से प्राप्त की।[3]

श्री गोविन्द अभी नौ वर्ष की अल्पावस्था के ही थे कि तत्कालीन मुगल सम्राट् औरंगजेब ने आपके पिता श्री गुरु तेगबहादुर को दिल्ली आने का आदेश दिया। मुगल सम्राट् की यह दृढ धारणा थी कि यदि गुरु तेगबहादुर इस्लाम स्वीकार कर ले तो पंजाब और उत्तरी-पूर्वी पर्वती प्रदेशों में इस्लाम की विजय-पताका सदा-सर्वदा के लिए लहराने लगेगी। श्री गुरु तेगबहादुर को दिल्ली

---

१. ता ते पयान निधान करायो।
करुणा बद बरखत मग धायो॥
कितक काल इस भांत विताई।
श्री लखनौर पहुँचे आई॥
पुर लखनौर अजब अरथाना।
कर चरित्र प्रभु जिह थाना॥
पल्लव पग पंकज सुख सारे।
अचुन गुरु जिह धरे पिआरे॥

—गुरुविलास, पृष्ठ ७१।

२. जीवन कथा, गुरु गोविन्दसिंह ; प्रो० करतारसिंह, पृष्ठ ४१।

३. दि पोयट्री ऑफ दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ३११।
जीवन कथा, गुरु गोविन्दसिंह ; प्रो० करतारसिंह, पृष्ठ ४४।

बुलाए जाने और परिणाम का पूर्ण आभास था, [illegible] गोविन्द राय को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया [illegible] चल पड़े।

नवम गुरु जब दिल्ली पहुंचे तो उनके सम्मुख हिन्दू [illegible] इस्लाम-धर्म को अंगीकार करने का प्रस्ताव रखा गया। श्री गुरु [illegible] प्रस्ताव को ठुकरा दिया और स्वधर्म की रक्षा के निमित्त अपने [illegible] बलिदान कर दिया। श्री गुरु तेगबहादुर के वध का वर्णन प्राचीन [illegible] रचनाओं तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलता है। प्रसिद्ध इतिहासकार डा० [illegible] ने स्पष्ट लिखा है कि—"उन्होंने कश्मीर के हिन्दुओं को इस्लाम में [illegible] परिवर्तित करने का खुला विरोध किया था। दिल्ली में बुलाए जाने पर [illegible] कारागार में डाल कर इस्लाम धर्म ग्रहण करने के लिए विवश किया गया और उनके विरोध करने पर पांच दिनों के पश्चात् उनका वध कर दिया गया।"[1] भाई सुखासिंह जी ने अपने गुरुविलास में भी विस्तारपूर्वक इसका वर्णन किया है।[2] स्वयं श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने गुरु तेगबहादुर जी के बलिदान का वर्णन किया है।

अपने पिता के बलिदान के बाद श्री गोविन्द, श्री नानकदेव की धर्मगद्दी के पदाधिकारी हुए। पिता के बलिदान का आघात एवं तत्कालीन हिन्दुओं की गिरी हुई अवस्था ने बाल-गुरु के हृदय पर गहरा प्रभाव डाला और उन्होंने मुगल शासक से लोहा लेने का दृढ़ निश्चय किया। उन्होंने प्रण किया कि वे

"तिलक जञ्जु राखा प्रभु ताका,
कीनो बड़ो कलू महि साका।
साध[illegible] इती जिनि करी,
सी[illegible]र सी न उच्चरी॥
धर्म हेत[illegible]जन किया,
सीसु [illegible]र न दिया।"[3]

नैराश्य के गर्त में गिरी हिन्दू जाति का पुनर्गठन कर, मुगल अधिकारियों को उनकी अमानुषिकता का दंड देंगे और श्री गुरु जी ने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि—

"बाजन सू मैं चिड़ियां लड़ाऊं,
तबहि गोबिंद नाम धराऊं।
एक लाख सु एकहि लड़ाऊं,
तबहि गोबिन्द नाम धराऊं॥

श्री गुरु गोविन्दसिंह को बाल्यावस्था से ही शस्त्र प्रिय थे और अब परिस्थितिवश उन्होंने अभ्यास बढ़ा दिया, उनके साथ उनकी फूफी के पांच लड़के सांगू शाह, जीतमल, गोपालचन्द, गंगाराम, मेहरीचन्द एवं सूरजमल के दो लड़के गुलाबराय व श्यामदास, मामा कृपालसिंह, भाई दयाराम और नन्दचन्द रहते थे।[1]

श्री गुरु जी महाराज ने अपने सभी शिष्यों को आदेश दिया कि जो दरबार में आए, वह या तो घोड़ा लाए या उत्तम शस्त्र। ये भावी युद्ध की तैयारी के साधन थे। जब सब लोगों को इस बात का पता चला तो सभी हृष्ट-पुष्ट घोड़े, शस्त्र तथा अन्य युद्ध का सामान भेंट करने लगे। इस प्रकार दिन-प्रतिदिन उनकी सेना और शस्त्रों में वृद्धि होने लगी। काबुल के दुनीचन्द ने श्री गुरु गोविन्दसिंह को एक बहुमूल्य तम्बू भेंट किया जिसमें सोने और चांदी की तारों से कसीदाकारी और नकाशी का काम किया हुआ था।[2]

आसाम नरेश के देहान्त हो जाने पर उनका द्वादश वर्षीय पुत्र श्री गुरु गोविन्द से मिलने आया। उदाहरणार्थ वह अपने साथ ५ चतुर घोड़े, एक चतुर हाथी—जिसे विभिन्न प्रकार के कार्य सिखाए गए थे, एक ऐसा अस्त्र जिसे दबाने से बर्छी, बल्लम, पिस्तौल और बंदूक आदि पांच अलग-अलग अस्त्र बन जाते थे तथा एक चौकी दी जिसमें चार पुतलियां थी जो कल दबाने से पासा खेलती थी। उस हाथी का नाम 'प्रसादी' रखा गया।[3] श्री लतीफ के अनुसार

---

१. श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ७१।
२. जीवन कथा गुरु गोविन्दसिंह, पृष्ठ ७१ तथा
श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ८७।
३. दि सिक्ख रेलिजन, मैकालिफ, भाग ५, पृष्ठ ४-५।
श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ९२।
जीवन कथा श्री गुरु गोविन्दसिंह, पृष्ठ ८०-८१।
गुरु विलास, पृष्ठ १०८।

उनका प्रथम विवाह सवत् १७३० (सन् १६७३ ई०) तथा द्वितीय स० १७४१ (सन् १६८४ ई०) मे मानते है, पर अधिकाश विद्वान् जिनमे मैकालिफ, डॉ० जगवन्तसिंह आदि आते है, प्रथम पाणिग्रहण सस्कार स० १७३४ वि०(सन्१६७७ ई०) और दूसरा चार वर्ष उपरान्त मानते हैं। पर तीसरे विवाह की सदिग्धता बनी रहती है क्योंकि उसकी पुष्टि मे प्रमाण कम ही मिलते है।

मिति माघ सुदी ४, सवत् १७४३ (सन् १६८६ ई०) को उनकी पत्नी सुन्दरी के गर्भ से अजीतसिंह ने जन्म लिया। मिति चैत्र वदी ७, स० १७४७ (सन् १६९० ई०) को दूसरी पत्नी जीतोदेवी की कोख से जोरावरसिंह का जन्म हुआ। इन्हीं (जीतोदेवी) की कोख से मिती माघ सुदी १, स० १७५३ (सन् १६९६ ई०) को तीसरे पुत्र जुझारसिंह का जन्म हुआ, इसके लिए बधाई देने बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध कवि केशवदास के पुत्र श्री कुवर इनके यहाँ आये थे, जिनको बाद मे गुरु जी ने दरबारी कवि नियुक्त कर लिया था। जीतोदेवी की कोख से ही चौथे पुत्र फतेहसिंह का जन्म[1] सवत् १७५५ (सन् १६९८) को हुआ।[2]

इस प्रकार से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री गुरु गोविन्द राय के चार पुत्र थे। और वे अपने पिता का ही अनुकरण करते थे। चारो को श्री गुरु जी ने युद्ध विद्या, अस्त्र-शस्त्र चालन मे प्रवीण कर दिया था। चारो अपने पिता के समान ही शूरवीर, निर्भीक और धर्म की रक्षार्थ प्राणो की आहुति के लिए तत्पर रहते थे। गुरु-पुत्र देश की तत्कालीन परिस्थितियो से भली प्रकार से परिचित थे। युद्ध-स्थलो पर श्री गुरुजी के साथ रह कर रण-कुशलता एव युद्ध-विद्या का अवलोकन उत्साहपूर्वक करते थे।

यद्यपि गुरु गोविन्द का अधिकाश समय युद्धो की तैयारी तथा युद्धो मे ही व्यतीत हुआ, यह सब तत्कालीन परिस्थितियो के कारण हुआ, नही तो गुरु महाराज युद्ध-प्रिय न थे। हृदय से जनता का सुधार करने के इच्छुक थे।[3] जब

[illegible] मैकालिफ ने फाल्गुन स० १७५५ माना है और श्री दरमेरा चमत्कार [illegible] ०।

[illegible] पृष्ठ १७६, १९९ ; जीवन कथा, श्री गुरु गोविन्दसिंह, [illegible]न, भाग ५, पृष्ठ ५१, ५५, ५६, ६०।

[illegible]व्य, पृष्ठ ४८।

आपके प्रयत्नों से मित्रता हो गई। इन्हीं दिनों आपने देहरादून से तीस मील की दूरी पर पांवटा नामक एक दुर्ग बनवाया।[1] यहीं पर बुद्धू शाह नामक मुसलमान से भी आपका परिचय हुआ जो आपसे प्रभावित होकर आपका शिष्य हो गया। बुद्धू शाह सढौरे का जागीरदार था जो अपने साथ ५०० सशस्त्र पठान सैनिकों को लेकर आया था जिन्हें औरंगजेब ने अपनी सेना से निष्कासित कर दिया था, सम्राट् के भय से कोई भी उन्हें अपने पास नहीं रखता था। श्री गुरु महाराज ने निर्भीकता पूर्वक उनको शरण दे दिया। उन पठानों में पांच मुख्य सरदार थे—हयात खां, काले खां, निजाबत खां, उमर खां और भीखन खां।[2]

श्री गुरु जी राजा फतहशाह और मेदनी प्रकाश को साथ लेकर जंगलों में शिकार खेलने जाते थे और युद्ध का भी अभ्यास करते थे। गुरु गोविन्द जी के वीरतापूर्ण कार्यों ने उनके समीपस्थ राजाओं तथा अनुयायियों में उनके प्रति श्रद्धा और आदर का भाव उत्पन्न कर दिया।

श्री गुरु गोविन्दराय की वीरता से प्रभावित हो दूर-दूर के लोग आपके दर्शन को आते थे और उपदेश श्रवण करते थे। उनकी ओर आकर्षित हो कई सम्भ्रात व्यक्ति उनसे अपनी पुत्रियों का विवाह करने के प्रबल इच्छुक थे। २३ असाढ़ सं० १७३४ (सन् १६७७ ई०) को आपका विवाह आनन्दपुर के पास 'गुरु का लाहौर' में लाहौर निवासी हरिजस सुभिखिया खत्री की पुत्री श्रीमती जीतोदेवी जी के साथ हुआ।[3] रामसरन खत्री की पुत्री सुन्दरी का विवाह भी आपसे हुआ।[4] कुछ लोग रोहतास गाव के प्रेमी सिख की कन्या से आपका तीसरा विवाह मानते हैं।[5] गुरुजी का इस कन्या से शारीरिक सम्बन्ध न था। किन्तु प्रामाणिक पुस्तकों से उनके दो विवाहों का ही पता चलता है। कतिपय लेखक

---

१. संत साहित्य : डॉ० सुदर्शनसिंह मजीठिया, पृ० १७७।

२. गुरु विलास, पृष्ठ १२७।
   दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ २०।
   श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ १२७।

३. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ २ ; श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ८०-८२ ;
   दश गुरु ; डॉ० जसवंतसिंह, पृष्ठ ६२।

४. श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ८८ ; दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ३।

५. जीवन कथा, श्री गुरु गोविन्दसिंह, २३१।

उपर्युक्त घटना का वृत्तान्त कई रूपों में मिलता है। इसमें मात्र इतना ही सत्य है कि लोगों को विश्वास दिलाने के लिए यह सब किया गया था।

इसके बाद गुरु गोविन्द जी ने 'खालसा पन्थ' का निर्माण किया। "उन्होंने शान्तिप्रिय हिन्दुओं के एक वर्ग को 'खालसा' पन्थ का नाम देकर एक सैनिक सघ के रूप में बदल दिया था।"[1] 'खालसा' अरबी 'खालिस' पर आधारित है जिसका अर्थ होता है शुद्ध। इस पन्थ द्वारा आपके अनुयायी सन्त-सैनिक के रूप में हमारे सामने आते हैं। १ वैसाख स० १७५६ (सन् १६९९ ई०) को गुरु जी ने यह मत चलाया। यह आपके शिष्यों को सुदृढ एव महान् वज्रीभूत जाति बना देने का अद्भुत प्रयोग था।[2] अपने शिष्यों की भरी सभा में आपने बलिदान के लिए पुकार लगाई, विभिन्न वर्ण, जाति एव प्रान्तों के पाच पुरुषों ने अपना सीस देना स्वीकार किया।[3] यही पाचों 'पच प्यारे' कहलाए। फिर लोहे के एक कटोरे में जल अभिमन्त्रित कर 'अमृत' तैयार किया और इन पाचों को पिलाया। बाद में इन सबके हाथों से स्वय पीकर 'खालसा' हुए। सबके नाम के साथ आपने 'सिंह' पद लगाया और अपना नाम भी गोविन्द राय से बदल कर गोविन्द-सिंह रखा।

खालसा पथ की स्थापना के साथ श्री गोविन्दसिंह ने शिष्यों में नव-प्राण सचार कर दिया। आपने सिक्खों की एक विशेष वर्दी की भी व्यवस्था की। प्रत्येक सिक्ख के लिए पाच 'ककारों' को धारण करना पडता था—केश, कघा, कडा, कृपाण एव कच्छ।[4] अब इसके साथ सम्राट के विरुद्ध आवाज उठाने का

---

१. 'सिक्ख - वाह गुरु का फौज', गुरुबख्शसिंह, धर्मयुग, १४ अप्रैल, १९६३।

२. दस गुरु, पृष्ठ ६३।

३ 'वासी मोर लाहौर दयाला। नाम दया सिंह दास कृपाला ॥
मुहकम नाम दुति गायो। वासी द्वारावती जनायो ॥
साहिब सिंह नाम इक कहा। वासी बिदर दछनै अहा ॥
चतुर्थ धर्म सिंह अविनासी। हस्तन पुरवा जवन के वासी ॥
पचम हिम्मत सिंह जनायो। वासी श्री जगन्नाथ मनायो ॥
इह पांचो प्यारे निज जान। सिंह कह पाहुल दई निधान ॥

—गुरु विलास, पृष्ठ २३५।

४. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ९४, ९७ ;
भारत का इतिहास : डॉ० ईश्वरीप्रसाद, पृष्ठ २००।
इवोल्यूशन आफ दि खालसा, भाग २, पृष्ठ १०४।

उन्हें इस बात का भली प्रकार से ज्ञान हो गया कि तत्कालीन शासक आत्मोत्सर्ग, बलिदान से द्रवित नहीं होगा, तो उन्होंने इस पाप-शक्ति को नष्ट करने के लिए तलवार उठाने का सकल्प लिया। वे किसी को कष्ट न देना चाहते थे परन्तु निर्बल की रक्षा को सदैव प्रस्तुत रहते थे। जिस समय उनके पिता नवम गुरु श्री तेगबहादुर जी का वध हुआ, उनकी आयु मात्र दस वर्ष की ही थी। श्री गुरु गोविन्द यह भली प्रकार समझते थे कि औरगजेब से टक्कर लेने के लिए जितनी सैन्य-शक्ति की आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता लोगो से अन्ध विश्वासों के निराकरण की भी है। हिन्दू-सस्कारो की जजीरो मे जकडे पद-दलित और जिन्होंने कभी कृपाण को तथा बन्दूक को छुआ तक नही था, ऐसे मनुष्यों को एकत्र कर आपने अपनी प्रेरणा से सशक्त वीर बना दिया। गुरु जी ने उन नर-ककालो मे नया जीवन, नई शक्ति का सचार किया। आपने धोबियो, चमारों, धीवरो को भी ऐसा सेनापति बना दिया जिनसे बड़े-बड़े राजा भयभीत होने लगे।[1]

गुरु गोविन्द के पुरोहित पडित केशोदास[2] ने यह कह रखा था कि उसके पास दुर्गा को प्रगट करने की शक्ति है। अन्य पडितो ने भी युद्ध में सफलता के लिए देवी यज्ञ की आवश्यकता बताई, गुरुजी ने यज्ञ-आयोजन की आज्ञा दे दी। अनुमान से अधिक खर्च के लिए गुरुजी तैयार हो गए, वे चाहते थे कि कि हिन्दू-जाति अपने व्यर्थ के अन्धविश्वासों को भूलकर वास्तविक स्थिति को जान ले। यज्ञ मे पूर्णाहुति का चालीसवाँ दिन आ जाने पर भी देवी प्रकट होने के कोई लक्षण नहीं दिखाई दिए, गुरु गोविन्दसिंह ने पूछा तो पडितों ने कुलीन पुरुष की बलि के लिए कहा, इस पर गुरुजी उसी पडित की बलि देने लगे तो वह बहाना बना कर खिसक गया, उसके बाद अन्य पडित भी धीरे-धीरे वहाँ से खिसक गए। इसके बाद गुरु जी ने बची हुई सारी सामग्री हवनकुण्ड मे डाल दी, उससे चारों ओर अग्नि की लपटें उठने लगी और लोगों ने समझा कि देवी प्रकट हो गई है और गुरजी को वरदान दे गई है।

---

१. जीवन कथा, श्री गुरु गोविन्दसिंह, पृष्ठ ४४१।
ट्रांसफार्मेशन ऑफ सिखिज्म, पृष्ठ १३८।
'रहनी रहै सोई सिख मेरा, वह साहिब मैं उसका चेरा।'
—श्री दशमेश ..., पृष्ठ

२. कुछ लोग पंडित का नाम 'केशवदास' बताते हैं।

वे वीर-बालक अपने दादा के ही समान धर्म से विमुख नहीं हुए और उस निर्दयी नवाब ने दोनों को जीवित दीवार में चुनवा दिया।[1] यह भयंकर कार्य १३ पूस, स० १७६२ (सन् १७०५ ई०) के दिन हुआ। कुछ इतिहासकार यह कहते हैं कि जुझारसिंह और फतहसिंह को दीवार में नहीं चुनवाया गया था अपितु तलवार से उनका वध कर दिया था। परन्तु अधिकांश इतिहासकार दीवार में चुनवा दिया गया ही मानते हैं। इस विषय में मुसलमान इतिहासकार श्री लतीफ, श्री कादिर आदि भ्रामक मत उपस्थित करते हैं। इस बलिदान, निर्मम हत्या की बात सुनते ही माता गूजरी के प्राण भी उन दोनों पौत्रों की खोज-खबर लेने चल दिए।

उधर गुरु जी स्वयं कुछ थोड़े से सिक्खों व अपने दोनों बड़े पुत्रों के साथ चमकौर ग्राम में घिर गए, उस युद्ध में अन्य सथियों के अतिरिक्त गुरु जी के दोनों बड़े पुत्र भी रणभूमि में वीरगति को प्राप्त हो गए। गुरु जी स्वयं शत्रुओं से बच कर मालवा प्रदेश में पहुँचे। यहीं दीना ग्राम से भाई दयासिंह के हाथ औरंगजेब को फारसी में एक पत्र—'जफरनामा' लिख कर भेजा।[2]

जब गुरु जी तलवंडी पहुँचे तो आपकी पत्नियां आपके पास आई और जब उन्हें यह हृदय-विदारक समाचार विदित हुआ कि उनके चारों पुत्र इस संसार को छोड़ गए हैं तो बहुत दुखी हुई। तब गुरु जी ने उन्हें मानव-शरीर की क्षण-भंगुरता का उपदेश दिया और कहा कि उनका पांचवा पुत्र 'खालसा' इस शहीदी दिवस से दिन-प्रतिदिन शक्तिशाली होगा—

"जननी जने ता भगत जन कै दाता कै सूर।
नाहि ते जननी बांझ रहे कहे गुवावे नूर॥[3]

और इसके साथ ही समस्त सिक्ख-सम्प्रदाय की ओर इंगित करते हुए कहा :

"इन पुत्रन के सीस पै,
वार दिए सुत चार।

---

१. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ९० ।
गुरु विलास, पृष्ठ ४४६ ; दश गुरु, पृष्ठ ६५ ;
श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ५३१ ।
२. श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ५४६ ।
जीवन कथा श्री गुरु गोविन्दसिंह, पृष्ठ ३४४ ।
गुरु विलास, पृष्ठ ८६५, ६६, ७० ।
३. श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ५६६ ।

कार्य था , यह प्रथा सिक्खों में 'खंडे दी पाहुल' कहलाती है ।[1]

गुरु गोविन्दसिंह के उत्कर्ष से पहाडी नरेश ईर्ष्या करने लगे, यद्यपि गुरु जी ने उनसे मित्रता करने का कई बार प्रयत्न किया परन्तु वे अपने इस प्रयास में सफल न हो सके । पहाडी नरेशो से श्री गुरु महाराज के काफी युद्ध हुए यद्यपि विजय आपकी ही हुई, पर काफी हानि आपको उठानी पडी । पहाडी राजाओं ने जब इस प्रकार से आपसे युद्ध में हार खाई तो उनकी बदला लेने की भावना और तीव्र हो उठी और उन लोगों ने मुगल सम्राट् औरंगजेब को आपके विरुद्ध भडका दिया । बादशाह ने तब एक बहुत बडी सेना को शाहजादा मुअज्जम के सेनापतित्व में गुरु जी को पकड लाने को भेजा । पर श्री गुरु जी को पकड़ना टेढ़ी खीर थी। एक लम्बे समय तक मुगल सेना आनन्दपुर को घेरे रही पर गुरु जी को पकडने में असफल रही । अन्त में औरंगजेब ने सं० १७६१ (सन्१७०४ ई०) में आक्रमण न करने की कुरान की शपथ ली और आपसे मिलने की उत्कट इच्छा प्रकट की ।[2] श्री गुरु महाराज यद्यपि औरंगजेब की इस दुरंगी चाल को समझते थे पर उनकी माता तथा सिक्खों ने उन्हें आनन्दपुर छोड़ने को विवश कर दिया । उनकी माताजी दो पोतों को साथ ले आनन्दपुर से चल दी, तत्पश्चात् अन्य अनेक शिष्य भी चलने को तत्पर हो गए । तब श्री गुरु जी ने अपना अधिकाश सामान नष्ट कर आनन्दपुर छोड़ दिया, जब प्रात. विपक्षी दल को इस बात का ज्ञान हुआ तो अपनी सौगन्ध को एक किनारे रख उनका पीछा किया, सिरसा नदी के किनारे पर दोनो पक्षों की मुठभेड हुई । इस गड़बड मे गुरु-माता और दोनो छोटे पुत्र बिछुड़ कर सरहिन्द की ओर निकल गए । इनके साथ गंगू[3] नामक ब्राह्मण भी था, उसने पुरस्कार के लालच से इनके साथ विश्वासघात किया और इन्हें मुरडे के नवाब को सौंप दिया, उसने इन तीनों को सरहद के नवाब वजीर खा को सौंप दिया । उसने गुरु-पुत्रो से इस्लाम धर्म या मृत्यु दोनो मे से एक को अंगीकार करने को कहा पर

---

१. संत साहित्य, पृष्ठ १८० ।
२. श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ४८१, ५२७ ।
गुरु विलास, पृष्ठ ४१५ ।
दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ १८४-८५ ।
३. गुरु गोविन्दसिंह और उनका काव्य, पृष्ठ ५२ ।

जाया करती रही। ट्रम्प ने इस बात का खंडन किया है, प्रो० करतारसिंह ने भी कुछ विद्वानों के इस अनुमान का खंडन किया है।[1]

नांदेड़ शहर में एक दिन घूमते हुए श्री गुरु जी महाराज माधोदास बैरागी के आश्रम में पहुंच गए। इनसे प्रभावित होकर उसने इनकी शिष्यता भी स्वीकार कर ली।[2] उसका नाम श्री गुरु जी ने 'गुरबख्शसिंह' रखा। किन्तु यह इतिहास में 'बन्दा बैरागी' के नाम से प्रसिद्ध है। गुरु जी ने इनसे पंजाब के नवाबों के अत्याचार को समाप्त करने को कहा। बन्दा बैरागी दशम गुरु की आज्ञा को पूर्ण करने लिए कुछ थोड़े से सिक्ख साथ ले निकल पड़ा, सढौर के नवाब को मारते हुए सरहिन्द के नवाब वजीरखां का सिर-छेदन कर उसने पहाड़ी राजाओं से बदला लिया।

नांदेड़ में गुलखा नामक पठान ने श्री गुरु गोविन्दसिंह पर बदला लेने की भावना से वार किया जिससे आप घायल हो गए, उसी अवस्था में आपने गुल का वध कर दिया। बहादुर शाह ने चतुर चिकित्सकों से आपका उपचार करवाया और आप एक पखवारे में स्वस्थ हो गए। बादशाह ने तब कुछ समयोपरान्त आपको कुछ उपहार भेजे, उनमें दो धनुष भी थे। गुरु जी ने जैसे ही धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने का प्रयत्न किया कि उनके घाव के टांके खुल गए और खून बहने लगा। उनके साथ के शिष्यों ने तत्काल उपचार किया पर इस बार गुरु जी स्वस्थ न हो सके। यह घटना उनके लिए प्राण-घातक सिद्ध हुई। अपना अन्त समय निकट जान गुरु जी ने चालीस दिन के एक विशेष दीवान का आयोजन किया। अन्तिम दिन आपने सब शिष्यों को एकत्रित करके विभिन्न उपदेश दिए। साथ यह भी कहा कि अकाल पुरुष के सहारे सब कार्य करने से सफलता निश्चित है और उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके लिए कोई दुखी न हो।[3] जब शिष्यों ने उत्तराधिकारी जानने की उत्कंठा जताई तो आपने 'खालसा' को ही गुरु घोषित किया। 'ग्रन्थ साहब' व 'खालसा' में ही उन्होंने स्वाध्यात्मिक

---

१. जीवन कथा, श्री गोविन्दसिंह, पृ० ४०१, ४१२।
   सन्त-साहित्य, पृ० १८१।
२. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृ० २३७।
३. 'जो हमको रोवेगा कोई, तत उन लाखों दुःख होई।'

—गुरु विलास, पृ० ५६०।

चार मुए तो क्या था,
जीवित कई हजार ॥"

यही तो दशम गुरु, श्री गुरु गोविन्दसिंह जी की वीरता और ब
का आदर्श था।

इसके पश्चात् आपने दक्षिण यात्रा का विचार किया और—
"संवत् १७६३ विच कतक दे महीने दक्खन वल तुर पये।"

कुछ लेखकों का विचार है कि दक्षिण-यात्रा आपने औरंगजेब से मि
लिए की थी और कुछ के विचारानुसार भाई दया सिंह को पत्र (ज़फ़र न
लेकर गए काफी समय हो गया था और इस आशंका से कि कहीं दयासि
के साथ भी औरंगजेब ने निर्दयतापूर्ण व्यवहार न किया हो, श्री गुरु जी ने
साथ सेना ले दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। बाद का कारण ही ठीक
होता है।

मार्ग में बघौर के नवाब को हराते हुए आप शाहजहानाबाद की ओर
बघौर में ही आपको औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिल गया था।[1] औरं
की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार के लिए राजकुमारों में युद्ध हुआ। ब
शाह ने दीवान नन्दलाल की सहायता से गुरु जी को अपनी ओर मिला लि
गुरु जी ने धर्मसिंह के साथ अपने विश्वसनीय सैनिकों को भेजा। बहादुर
विजयी हुआ और उसने गुरु जी को आगरा पहुंचकर मिलने की प्रार्थना
जब वे दिल्ली से मथुरा, वृन्दावन होते हुए आगरा पहुंचे तो बहादुर शा
धूमधाम से आपका स्वागत किया।[2] गुरु जी ने चार माह तक सम्राट् बह
शाह के साथ आगरा में निवास किया।

बहादुर शाह के साथ गुरु जी ने पुनः दक्षिण यात्रा की। वे उसके स
नागपुर, पूना आदि से होते हुए नादेड नगर में गोदावरी के तट पर डेरा ल
कर रहने लगे। सर जान मैंकलम, खफीखाँ, सैयद मुहम्मद लतीफ, फास्ट
कनिंघम प्रभृति विद्वानों की धारणा है कि श्री गुरु गोविन्दसिंह ने मुगल से
में पद स्वीकार कर लिया था और इसी से आपको बहादुर शाह के साथ दक्षिण

१. जीवन कथा, श्री गुरु गोविन्दसिंह, पृ० ३८१।
२. जीवन कथा, श्री गुरु गोविन्दसिंह, पृ० ३८३।
श्री दशमेश चमत्कार, पृ० ६४४।

नादौन का युद्ध :

मुगल सम्राट् औरंगजेब ने अलिफ खां को हिन्दू राजाओं से कर (जजिया) मांगने भेजा। वह जब राजा भीमचन्द के पास आया तो उसने इन्कार कर दिया। परिणाम में युद्ध निश्चित था। राजा ने श्री गुरु जी से सहायता की याचना की, गुरु जी ने उसे स्वीकार कर उसकी सहायता की और मुगल सेना को पराजय का मुख निहारना पड़ा। इस विजय से श्री गुरु जी की सेना की वीरता की प्रशंसा सब स्थानों पर होने लगी।

हुसैनी युद्ध :

दिलावर खां के गुलाम हुसैन खां ने तब जजिया वसूल करने का बीड़ा उठाया और गुरु जी के विरुद्ध एक विशाल सेना लेकर चला। मार्ग में उसने कई हिन्दू राजाओं से कर वसूल किया। आनन्दपुर पहुँचने पर उसने गुरु जी से भी कर मांगा, परिणामत: युद्ध हुआ। इस युद्ध में भी गुरु जी के गले में ही विजय श्री ने माला डाली।

हुसैनी युद्ध के कारण सभी हिन्दू पहाड़ी राजा श्री गुरु जी से बहुत भयभीत हो गए। राजा भीमचन्द, भूपचन्द, अजमेरचन्द आदि सभी ने इस बात का प्रचार किया कि औरंगजेब की ही भांति, आप भी हिन्दू धर्म के विरोधी हैं। इस अफवाह से जम्मू, नूरपुर, भूटान, मंडी, कौथर, कुल्लू, चम्बा, गुलेर आदि के राजा अपनी सेनाओं सहित भीमचन्द के पास आ गए।[1] सबने गुरु गोबिन्द-सिंह को आनन्दपुर छोड़ देने को लिखा। गुरु जी ने उत्तर दिया कि तुम सबकी दूषित भावनाएं खालसा की तलवार के आगे न टिक पाएंगी। परिणामत: युद्ध हुआ और पहाड़ी राजाओं की हार हुई।

इस हार से खिन्न कर सब राजाओं ने मिल कर औरंगजेब को इस कार्य के लिए सहायता देने की याचना की। अन्यथा वश चाहे दी मांगें। औरंगजेब तो इसी की प्रतीक्षा में था और इस शुभअवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहता था। उसने तुरन्त सेना भेज दी पर गुरु जी ने सेना के दांत खट्टे कर दिए। तब कूटनीति से औरंगजेब ने उन्हें आनन्दपुर छोड़ने पर मजबूर कर दिया।

---

१. श्री दशमेश चमत्कार, पृ० १०८।
दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृ० १५७।

भावना और शारीरिक आत्मा तिरोहित कर दी।[1] अन्त समय निकट समझ आपने स्नान कर नए वस्त्र धारण किए, जापु जी का पाठ तथा अकाल पुरुष का स्मरण किया ; गुरु ग्रन्थ साहिब खोल कर सामने रखा, परम्परानुसार पाँच पैसे और एक नारियल उसके सामने रखे और उसे अपना उत्तराधिकारी कह शीश नवाया तथा शिष्यों को ग्रन्थ साहिब में निर्दिष्ट आदेश का पालन करने को कहा और कार्तिक सुदी ५, सं० १७६५ (सन् १७०८ ई०) को उस महान् सन्त योद्धा का शरीरान्त हो गया।[2]

"संवत सत्रह सहस भतीजें, अर्द्ध सहस धित अवर गणीजें।
कातिक सुदी पंचमी जान, वीर धार निस चढ़े विमान॥"[3]

दशम गुरु श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने अत्याचार के उन्मूलनार्थ शस्त्र उठाया था, सैन्य संगठन किया था। आपका सम्पूर्ण जीवन ही युद्धों से ओतप्रोत रहा। उन युद्धों का संक्षेप में वर्णन हमें उनके व्यक्तित्व को समझने में सहायक होगा।

भंगानी का युद्ध .

यह युद्ध संवत् १७४६ (सन् १६८६ ई०) के आसपास हुआ। श्रीनगर के राजा फतेह शाह की पुत्री का विवाह भीमचन्द के पुत्र के साथ निश्चित हुआ। विवाह के उपलक्ष में गुरु जी ने कुछ उपहार भेजे। भीमचन्द ने पुराने द्वेष के कारण वह उपहार वापिस कर देने को कहा और मार्ग में गुरु जी के आदमियों को जो वापिस जा रहे थे लूट लिया ; और अन्ततः युद्ध भंगानी में हुआ। इस युद्ध में गुरु जी की जीत हुई। रणक्षेत्र के दृश्य को देख गुरु जी का मन खिन्न हो उठा। आपने अपने शिष्यों को सभी घायलों की चाहे वे किसी भी पक्ष के क्यों न हों सेवा करने की आज्ञा दी।

---

1. Henceforth the Guru shall be Khalsa and the Khalsa the Guru. I have infused my mental and bodily spirit into the Granth Sahib and the Khalsa.

—दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृ० २४४।

२. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृ० २४६।

श्री गुरु महाराज के हृदय में सदैव अलख-अकाल-ज्योति प्रकाशित रहती थी। जहां कहीं उन्हें अलख-ज्योति का प्रकाश दिखाई दिया वहां उन्होंने दूसरों को भी उसी से प्रेरणा लेने को कहा :

"बिना सरन ताको न अउरे उपाय,
कहा देव दइतं कहा रंक राय।
कहा पातशाह कहा उम्मरायं,
बिना सरन ताको न कोटं उपाय।"

तत्कालीन भारत की, विशेषकर भारतीयता की शोचनीय अवस्था, इतिहास में स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाती है। समाज पर आए दिन अन्याय का वज्र गिरता रहता था, पाखंड का राज्य था, कृत्रिम प्रदर्शन और छुआछूत की समस्या ने अपने जाल में मानव को जकड़ रखा था। ऐसी विकट परिस्थितियों में गुरु जी का आविर्भाव हुआ। स्वयं श्री कृष्ण भगवान ने गीता में कहा है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।

ऐसी ही परिस्थितियां उस अलख ज्योति को अन्धकार दूर करने के लिए बाध्य करती है, उस समय भी ऐसा ही हुआ—

"हम इह काज जगत मो आए,
धर्म हेत गुरदेव पठाए।
जहां-तहां तुम धर्म बिथारो,
दुसट देखियत पकरि पछारो॥
या ही काज धरा हम जनमं,
समझ लेहु साधु सभ मनमं।
धरम चलावन संत उबारन,
दुसट सभन को मूल उपारन।"[1]

दुष्टों के विनाश के लिए, साधुओं के परित्राण के लिए तथा संसार में धर्म की स्थापना करने हेतु ईश्वरीय आज्ञा से संसार में जन्म लेने की घोषणा करने में गुरुजी को अपने हिन्दू-समाज का पूर्ण प्रेम, विश्वास तथा सहयोग प्राप्त हुआ। हिन्दुओं को 'गीता' का ज्ञान देने वाले भगवान 'गोविन्द' तथा गुरु

---

1. बिचित्र नाटक अध्याय ६, छन्द संख्या ४२, ४३।

उपर्युक्त युद्धों के अतिरिक्त चमकौर तथा मुक्तसर का युद्ध भी महत्वपूर्ण है। मुक्तसर के युद्ध में मुगल सेनापति को अपनी सेना वापिस लौटा ले जानी पड़ी और गुरु जी को विजय प्राप्त हुई। बाद में बन्दा बैरागी ने गुरु जी की प्रतिज्ञा को पूर्ण किया और सतलज एवं यमुना के बीच के क्षेत्र में सिक्खों का अधिकार हुआ तथा निरंकुश व धर्मान्ध मुगल सम्राट् औरंगजेब का शासन भी बहादुरशाह के पश्चात् समाप्त-प्राय हो गया। अन्ततः हम कह सकते हैं कि गुरु जी के सभी युद्ध अन्याय, अनाचार, अत्याचार के विरोध में किये गये थे।

(ब) व्यक्तित्व

दशम गुरु श्री गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज के व्यक्तित्व में हमें एक सन्त-योद्धा का व्यक्तित्व मिलता है।[1] आप आततायियों के विरुद्ध राष्ट्र-शक्ति का आह्वान करने वाले लोक-नायक थे। जब हम श्री गुरु गोविन्दसिंह के बारे में सोचते हैं तो स्वभावतः ही हमारे सामने एक प्रभावशाली योद्धा— एक वीर महापुरुष का चित्र आ जाता है। उनके महान् व्यक्तित्व में अनेकानेक योग्यताएं घुल-मिल गई थीं, उनके व्यक्तित्व-सम्मुख हम श्रद्धा से नत हो कह ही उठते हैं—"फौजों वाला (सेनापति) कल्गीधर, चिट्टे (श्वेत) बाजों वाला, नीले घोड़े का शाह-सवार।"[2]

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी का जीवन युद्ध करते ही बीता, यद्यपि आप हृदय से युद्ध के समर्थक न थे परन्तु सत्य-धर्म के विस्तार और दुष्टों का नाश करने के लिए ही आपने तलवार उठाई, आपकी युद्ध-नीति सत्यता और पवित्रता पर आधारित थी। आपने न तो कभी आक्रमण में पहल की और न ही किसी राज्य पर अधिकार-लिप्सा प्रकट की। उनके युद्ध किसी जाति-विशेष अथवा सम्प्रदाय के विरुद्ध न थे। उनका उद्देश्य, मात्र अत्याचारियों का दमन था। उनकी सेना में अनेक मुसलमान पठान भी थे, बुद्धूशाह जैसे वीर ने तो उनकी ओर से लड़ते हुए अपने दो पुत्रों की आहुति भी रण-यज्ञ में दे डाली।[3]

---

१. Guru Gobind singh the tenth and last of the Gurus, has been rightly called the *Soldier Saint of India*
—A Brief account of the Sikh people, Ganda Singh, Page 24.

२. दुष्ट दमन, श्री गुरु गोविन्दसिंह जी, प्रो० करतारसिंह, पृ० ३।

३. श्री दशमेश चमत्कार, पृ० ११५-६२।

(ख) साहित्य परिचय

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी एक दृढ-संकल्प धर्मगुरु, एक विजयी युद्ध-वीर और एक कृतज्ञ नीति-परायण नेता होते हुए भी एक सिद्धहस्त प्रवीण कवि भी थे। वे लेखनी का वार भी उतनी ही पटुता से करते थे जितना की शस्त्रास्त्र का।[1] गुरु जी का समय (सन् १६६६-१७०८) हिन्दी-काव्य के तृतीय युग-रीतिकाल, का युग था, रसिक प्रवृत्ति का प्रभाव चारों ओर दिखाई देता था। कवियों को दरबारों की नशीली चीजों के स्वाद ने निष्क्रिय बना दिया था। उनका क्षेत्र कामिनी की रसीली 'बतियाँ' और 'छतियाँ' तक ही सीमित रह गया था। हिन्दी की रीति-युगीन उपर्युक्त प्रकार की कविताओं के बीच 'भूषण' की वीर-रस-पगी कविता अपना अलग व्यक्तित्व रखती है—गुरु गोविन्दसिंह जी की कविताओं में भी वैसे ही उज्ज्वल मंत्र है।[2]

गुरु गोविन्दसिंह जी गुणियों का उचित सत्कार व सम्मान भी करते थे, आप स्वयं कवि थे और आपका दरबार कवियों और अन्य विद्वानों से भरा रहता था। गुरु जी की गुण-ग्राहकता और कला-प्रेम की प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई थी और विभिन्न कलाविद् उनके यहां राजाश्रय पाने के लिए लालायित रहते थे। विभिन्न भाषाओं के बावन कवियों को उन्होंने आश्रय दिया था। उनकी नामावलि इस प्रकार है—अवधदास, अणिराय, अमृतराय, अली हुसैन, अल्लू, आलिम शाह, आसासिंह, ईश्वर दास, उदय राय, कलुआ, कुवरेश, खानचन्द, चन्दन, जमाल, टहकन, दयासिंह, धर्मचन्द, धर्मसिंह, धन्नासिंह, ध्यानसिंह, नन्दलाल, नन्दसिंह, नानू, निश्चलदास, निहालचन्द, पिण्डीमल, बल्लभ दास, बल्लू, बिधीचन्द, बृन्द, ब्रजलाल, मुकुन्द, मथुरादास, मदन सिंह, मद्दू, मल्लू, मानचन्द, मानदास, मालसिंह, मंगल, रामचन्द, रावल, रोशनसिंह, लखासिंह, सुखासिंह, सुखदेव, सुम्भू, सुखिया, सुदामा, सुन्दर, सेनापति, सोहन, हंसराम, हीर।[3] ये कवि प्राय अपनी रचनाएँ स्वतः सुनाय

---

१ कल्याण, हिंदू अंक, सिख गुरु, डॉ० [illegible], पृ० ११८।
उत्तरी भारत की संत परम्परा, परशुराम चतुर्वेदी पृ० ३१४।

२. संस्कृति के चार अध्याय 'दिनकर', पृ० ३२२।

३. दि सिक्ख रिलिजन, भाग ५ पृ० ६९।
श्री दशम गुरु काव्यानुवाद पृ० १०१

प्रयत्नों के फलस्वरूप ही पुरातन दुर्बल-कोमल-पन्थी-साधुओं के स्थान पर नवस्फूर्ति आदर्श-दृष्टिकोणयुक्त साधुओं की सृष्टि हुई। अपने शिष्यों को आपने आत्म-सम्मान से पुष्ट किया ईश्वर के प्रेम से परिपूर्ण किया, उनके समक्ष निःस्वार्थपूर्ण जीवन व्यतीत करने का कठोर आदर्श उपस्थित किया, गुरु जी ने जाति को उन्नति की ओर ले जाने वाले पुरुषों की सृष्टि की। गुरु जी के चामत्कारिक व्यक्तित्व का ही यह फल था कि आपकी शिष्य-परम्परा में दृढ उत्साह, अथक धैर्य भर गया। वह दुर्दमनीय बन गए। गुरु जी का ही ऐसा व्यक्तित्व था कि वह चट्टान की भांति अटल, धैर्ययुक्त स्थिर रहता था चाहे दुख उसको कण-कण से ही क्यों न प्रभावित करे पर वह प्रभावित न होता था।

उनका व्यक्तित्व प्रभाव ही उनके समर्थकों पर विशेष रूप से पड़ा। इसी कारण सदैव विजयश्री आपको प्राप्त हुई। देश, जाति के हेतु उन्होंने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। वे त्याग की मूर्ति और मानवता की भावना से ओतप्रोत थे। शरणागत की रक्षा करना वे अपना परम कर्तव्य समझते थे। यह उन्हीं का व्यक्तित्व था जिसने उस घोरतम अत्याचारों के युग में वीरों को जागृत किया। मोनियर विलियम्स् के शब्दों में हम कह सकते हैं कि—"यदि गुरु नानक ने सिक्ख धर्म की नींव डाली तो दशम गुरु गुरु गोविन्दसिंह ने उसमें देश-भक्ति की नींव डाली।"

गुरु जी के प्रयत्नों ने हिन्दू समाज को जागृत कर दिया और आपने उसे धर्म-कर्त्तव्य की रक्षा करने की शिक्षा देकर यथार्थ मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया। आपने अपने प्रयत्नों को चिरस्थायी रूप देने के लिए हिन्दू-समाज की विशाल सेना का अग्रदल सिक्ख (खालसा) को बना दिया। सिक्ख सम्प्रदाय हिन्दू-धर्म का संशोधित सम्प्रदाय है। गुरु गोविन्दसिंह का खालसा हिन्दू-समाज और सिक्ख-सम्प्रदाय रूपी सेना का असाधारण अग्रदल है। गुरु जी ने हिन्दू-जाति के गौरव को स्थिर रक्खा, उसे अधोगति की ओर जाने से रोक उच्चता-उज्ज्वलता की ओर ले गए। किसी ने सच ही कहा है—

"अगर न होते गुरु गोविन्द सिंह
हिन्दू धर्म था दूर हुआ।"[1]

---

1. श्री गुरु गोविन्दसिंह : डॉ० जसवन्तसिंह, पृ० २६७।

१३ पाख्यान चरित्र,
१४ हजारे दे शब्द,
१५ सवैये तथा,
१६ जफर नामा।[1]

गुरु जी की उपर्युक्त सभी रचनाओं में हमें अनेक प्रकार की रचना-पद्धतियां, शैलियां मिलती हैं। इनकी भाषा में भी कई भाषाओं का सुन्दर सम्मिश्रण मिलता है। अपने युग तथा वातावरण की तीनों मुख्य भाषाओं—फारसी, पंजाबी, बृज पर समान अधिकार था और इन तीनों ही भाषाओं में आपने काव्य रचना की थी। परन्तु उनकी अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम ब्रजभाषा ही रही।[2] गुरु जी का साहित्य-सृजन-काल संवत् १७४० (सन् १६८३ ई०) के कुछ पूर्व से लेकर संवत् १७६३ (सन् १७०६ ई०) तक माना जाता है।

साहित्य का संक्षिप्त परिचय

जापु .

जापु गुरु गोविन्द सिंह जी की सर्वप्रथम रचना है। यह सिक्ख-धर्म के नित्यपाठ में सम्मिलित है। इसके प्रारम्भ में गुरु जी ने ईश्वर के निराकार रूप को विविध विशेषणों द्वारा सम्बोधित किया है। गुरु ग्रन्थ का प्रारम्भ जैसे 'जपुजी' साहिब से होता है वैसे ही 'दशम ग्रन्थ' का प्रारम्भ 'जापुजी' से होता है। इसमें कुल १९९ पद हैं। इसमें ओजपूर्ण भाषा में ईश्वर के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन कर उसकी मूलभूत एकता का प्रतिपादन किया गया है।

'जापु' मुक्तक रचना है। छन्दों का क्रम वन्दना के साथ ही परिवर्तित होता जाता है। यद्यपि छप्पय, भुजंग-प्रयात, चाचरी, एक अछरी आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है पर भुजंग-प्रयात और चाचरी छन्द का आधिक्य है। ग्रन्थ की भाषा में यद्यपि फारसी तथा अवधी का पुट है पर प्रमुख भाषा 'ब्रज' है। संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग भी ईश्वरीय-गुणों के अनुसार स्वाभाविक ढंग से हुआ है। यह रचना विष्णु-सहस्रनाम की शैली पर लिखी गई है जिसमें ईश्वर की उपासना विविध नामों से की गई है।[3] प्रथम पद में ही ईश्वर के

---

१ ए हिस्ट्री आफ सिक्खस् : कनिंघम, पृ० ३२६।
२. ए हिस्ट्री आफ सिक्खस : कनिंघ, पृ० ३२५।
३ दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृ० २६१।

लिखते थे और उन्होंने गुरु जी द्वारा प्रेरित किए जाने पर अनेक ग्रन्थों का भाषानुवाद भी प्रस्तुत किया। आनन्दपुर ही इन सबका केन्द्र था।

गुरु जी ने इस कवि-मंडली के साथ जो मौलिक और अनूदित साहित्य लिखा वह एक ही विशाल ग्रन्थ के रूप में एकत्रित रखा गया। इस दीर्घकाय ग्रन्थ का नाम 'विद्याधर' रखा गया था। कहा जाता है कि 'विद्याधर' का बोझ नौ मन था। संवत् (सन् १७०४ ई० १७३१) में आनन्दपुर का दुर्ग छोड़ने पर यह साहित्य भंडार शत्रुओं द्वारा लूट लिया गया।"[1]

गुरु गोविन्दसिंह की समस्त रचनाएँ "दशम पातशाह का ग्रन्थ" में संग्रहीत हैं। इससे गुरु जी की साहित्यिक-कुशलता तथा काव्य-शक्ति का आभास मिलता है। अपनी अधिकांश रचनाएँ आपने ३३ वर्ष की अवस्था तक ही लिख ली थी। जिस समय आप पहाड़ियों में रह कर अपनी शक्ति का विकास कर रहे थे, उस समय इन्होंने अपनी तथा अपने दरबारी कवियों की रचनाओं को एकत्रित करवाया।

प्रकाशित और प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रन्थों के अनुसार आपकी निम्न-लिखित कृतियां मानी जाती हैं :—

१. जापु,
२. अकालस्तुति,
३. विचित्र नाटक,
४. चडी चरित्र उक्ति विलास
५. चडी चरित्र,
६. वार श्री भगवती जी की,
७. चौबीस अवतार,
८. मीर मेहदी,
९. ब्रह्मावतार,
१०. रुद्रावतार,
११. शस्त्रनाम माला,
१२. ज्ञान-प्रबोध,

१. अकालस्तुति, भूमिका, अमरसिंह 'चाकर'।

वेद पुरान कतेब कुरान,
जमीन जमान सबान के पेखे ॥
पउन अहार जती जत धार,
सबै सु विचार हजारक देखे ।
श्री भगवान भजे बिन भूपति,
एक रती बिन एक न लेखे ॥"

विचित्र नाटक :

यह श्री गुरु जी की आत्म-कथा है, जिसमें उन्होंने अपनी वंशावली का विशद वर्णन व अपने पूर्व-जीवन का वर्णन तथा इस संसार में आने का प्रयोजन बताया है। श्री गुरु गोविन्दसिंह जी की यह रचना सर्वाधिक लोकप्रिय कही जाती है। इसमें १४ अध्याय और ४७१ पद हैं। इस ग्रन्थ को आत्मचरित-काव्य की कोटि में रखा जा सकता है। प्रस्तुत रचना में गुरु जी ने भुजंग-प्रयात, रसावल, नराज, तोटक, सवैया, चौपाई, दोहरा, छप्पय, अड़िल, त्रिभंगी, भुजंग तथा मधुभार छन्दों का प्रयोग किया है। इसकी भाषा परिमार्जित-प्रौढ़ 'ब्रज' है। कहीं-कहीं अवधी के शब्द भी मिलते हैं। वर्ण्य विषय-अनुकूल शब्दावली का सुन्दर चयन हमें इस रचना में मिलता है। हिन्दी-साहित्य में पंजाबी-क्षेत्र की यह आत्मचरित सम्बन्धी प्रथम उत्कृष्ट रचना है।[1] प्रथम अध्याय में खड्ग की स्तुति और रस का सुन्दर उदाहरण है—

"खग खंड बिहंडं, खल दल खंडं,
अति रण मंडं, बर बंडं ।
भुज दंड अखंडं, तेज प्रचंडं,
जोति अमंडं, भानु प्रभं ॥
सुख संता करणं, दुरमति दरणं,
किल बिख हरणं, असि सरणं ।
जै जै जग कारण, सृष्टि उबारण,
मम प्रतिपारण जै तेगं ॥"

'विचित्र नाटक' में इतिवृत्तात्मकता और भावात्मकता का सुन्दर समन्वय

---

१. हिन्दी काव्य दर्शन भाग, पृ० ५० ।

कई नामों का प्रयोग किया गया है :—

"चक्र चिन्ह अरु बरन जाति अरु पाति नहिन जिह ।
रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकत किह ॥
अचल मूरती अनभउ प्रकास अमितोज कहिज्जे ।
कोटि इन्द्र इन्द्राण साहु साहाणि गणिज्जे ॥
त्रिभवण महीप सुर नर असुर नेत नेत बन तृण कहत ।
तव सरब नाम कथै कवन करम नाम बरनत सुमत ॥"

अकाल स्तुति :

जापु के समान ही इसमे व्यापक ब्रह्म के अनेक रूपो की व्याख्या की गई है । उसकी अपार महिमा का बखान करते हुए पाखड का खंडन किया गया है । जापु की अपेक्षा इस रचना का विषय एव वर्णन विस्तृत है । स्थान-स्थान पर ससार की नश्वरता और क्षणभगुरता का भी वर्णन किया गया है । ज्ञान के द्वारा ही ईश्वर प्राप्त होता है, अन्धविश्वास द्वारा नही , इसकी विशद व्याख्या की गई है । इसमे कुल २७१ पद हैं । यद्यपि ग्रन्थ का मुख्य विषय ईश्वर-स्तुति है परन्तु प्रसगवश अन्य धार्मिक, सामाजिक तथ्यो का भी वर्णन हो गया है ।

ग्रन्थ मुक्तक काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण है । ईश्वरीय नामो और गुणों का वर्णन प्रत्येक छन्द मे स्वतत्र रूप से किया गया है । इस ग्रन्थ मे 'कवित्त' और 'सवैया' छन्द का प्रयोग अधिक किया गया है । व्रजभाषा के परिमार्जित व प्रौढ-रूप का प्रयोग किया गया है, और भाषा प्रसाद-गुण-युक्त है । हिन्दी-साहित्य के सन्त-काव्य के अन्तर्गत इस रचना की विशेष गणना की जा सकती है ।

स्तुति के आरम्भ मे 'ओ३म' का स्मरण किया गया है :—

"प्रणवो आदि एककारा ॥
जल थल महीअल कीओ पसारा ॥
आदि पुरख अबिगति अबिनासी ॥
लोक चतुर्दस जोति प्रकासी ॥"

ईश्वर के विभिन्न रूपों के स्मरणोपरान्त, कवि पाखडो का त्याग कर विशुद्ध हृदय से ईश्वर-प्रेम में निमग्न होने के लिए कहता है :—

"तीरथ न्हान दया दम दान सु,
सजंम नेम अनेक बिसेखे ।

मुख्यतः से राम और कृष्ण के चरित्रो का वर्णन ही हमे इस रचना मे मिलता है। इसमे रामावतार-सम्बन्धी ८६४ और कृष्णावतार-सम्बन्धी २४६ पद है।

प्रस्तुत रचना मे वर्णित अवतार श्रीमद्भागवत मे उल्लिखित चौबीस अवतारो से भिन्नता रखते है। इसीसे रामावतार की कथा भी श्रीमद्भागवत के रामावतार से कई प्रसगो मे भिन्नता रखती है। कथा मे श्री गुरु जी ने कई प्रसगो मे नवीनता लाने का प्रयत्न किया है। गुरु जी के अनुसार सीता स्वेच्छा से वन जाती है जब कि श्रीमद्भागवत मे लोकापवाद के कारण। इसी प्रकार की भिन्नताएँ कुछ अन्य स्थलो पर भी पाई जाती हैं।

गुरु जी का श्री कृष्णावतार-वर्णन कई शीर्षको मे विभाजित है। इसमे भागवत के अनुसार कृष्ण-जन्म से लेकर भृगु-प्रसग तक सम्पूर्ण कथा का विस्तार विधिपूर्वक मिलता है।

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी के इस 'चौबीस अवतार' ग्रन्थ को हम महाकाव्य की कोटि मे नहीं रख सकते, क्योंकि इसमे महाकाव्य के सभी लक्षण नही मिलते।[1]

मीर मेहदी

दशम गुरु कृत 'चौबीस अवतार' के पश्चात् इस रचना का उल्लेख मिलता है। इसकी प्रेरणा सम्भवत आपको इस्लाम-धर्म के शिया-सम्प्रदाय-सम्बन्धी ग्रन्थो से प्राप्त हुई है।[2] रचना कुल ११ तोमर छन्दो मे कही गई है और ब्रजभाषा मे है। कहीं-कहीं फारसी शब्दो का प्रयोग भी मिलता है।

ब्रह्मावतार

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ मे श्री गुरु जी ने ईश्वर के नामो का स्मरण करते हुए ब्रह्मा को विश्व का बनाने वाला और उसकी उपासना मे मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन किया है। राम, कृष्ण, मुहम्मद आदि को उसी ने उत्पन्न किया। अतएव वे भी उसकी उपासना करते है। इसके पश्चात् ब्रह्मा के सात उप-

---

१. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रन्थ पृ० ८४।
२. वही, पृ० ९४।

है। इस रचना में वीर-रस का प्रतिपादन गुरु जी ने अत्यंत ओजस्विनी वाणी में किया है। विचित्र नाटक निःसन्देह आपकी सर्वोत्तम रचनाओं में से एक है।

चंडी चरित्र उक्ति-विलास

इसमें देवी चंडी की कथा मार्कण्डेय पुराण के आधार पर उत्कृष्ट काव्य-शैली में लिखी गई है। यह अंश दुर्गा-सप्तशती से सम्बन्धित है। यह ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभाजित है और पद संख्या ७०० है। इस रचना का उद्देश्य दलित प्रजा-वर्ग को अत्याचारी-शासकों के प्रति सजग करना है। जनता में नवोत्साह फूकने के लिए प्राचीन वैभवता की पुनरावृत्ति आवश्यक थी और इसी के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की गई।

इस ग्रन्थ में सर्वत्र ओज-गुण प्रधान ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है, शब्दावली और छन्दों के प्रयोग भावानुकूल हुए है। गुरु गोविन्दसिंह जी का लक्ष्य दुर्बल राष्ट्र में क्षत्रिय-भावना भरना था और चंडी-चरित्र में आपने इसी लक्ष्य की सफल पूर्ति की है।[1]

वार श्री भगवती जी दी (चंडी दी वार)

श्री गुरु गोविन्द सिंह के सम्पूर्ण साहित्य में मात्र यही पंजाबी भाषा की रचना है तथा पंजाबी साहित्य के वीर-रस की एक अनमोल कृति है। इस ग्रन्थ को हम प्रबंधात्मक खंड-काव्य कह सकते हैं, क्योंकि इसमें दुर्गा और देवासुर संग्राम का क्रमबद्ध वर्णन हुआ है। इसमें पंजाबी भाषा की सरल और ओजपूर्ण शब्दावली व्यवहृत है। रचना पहाड़ी छन्द में लिखी गई है।

चौबीस अवतार :

श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने इस रचना में अकाल पुरुष के चौबीस अवतारों का वर्णन किया है। ये अवतार क्रमशः मच्छ, कच्छ, नरनारायण, मोहिनी, वाराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, ब्रह्मा, रुद्र, जलन्धर, विष्णु, काल-पुरुष, अरहंतदेव, मनुराजा, धनवंतरि, सूरज, चन्द्र, राम, कृष्ण, अर्जुन, बुद्ध, कल्कि। इनमें से प्रथम २३ अवतार तो हो चुके है और अन्तिम कलियुग में होगा।[2]

---

१. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रन्थ, पृ० ४३।

२. ए हिस्ट्री आफ दि सिक्खस्, पृ० ३२६।

के उपचारों की कथा है। इसमें भक्ति, नीति, दर्शन और इतिहास का अपूर्व सम्मिश्रण है। ग्रन्थ के अन्त में इसकी समाप्ति का उल्लेख नहीं मिलता, इसी से डा० आष्टा आदि विद्वान् इसे अपूर्ण मानते हैं।[1] यह कृति प्रश्नोत्तर-शैली में लिखी गई है। फारसी, अरबी, पजाबी भाषा के शब्दों को साथ लिए हुए स्वच्छ 'ब्रज' भाषा का प्रयोग हुआ है। काव्य की दृष्टि से इसे भी प्रबन्धात्मक-काव्य की कोटि में रखा जा सकता है।

पाख्यान चरित्र .

इनमें वर्णित कथाओं को महाभारत, रामायण, पुराण, पचतत्र, हितोपदेश आदि, तथा फारसी के प्रसिद्ध ग्रन्थ बागोबहार, चारदरवेश, पजाब की जन-प्रचलित प्रेमगाथाओं आदि के आधार पर लिया गया है।[2] डॉ० धर्मपाल आस्ता तथा श्री रणधीर सिंह आदि विद्वानों ने इस रचना में कुल ४०४ उपाख्यानों का निर्देश किया है। इस पुस्तक का विषय-वैविध्य इतना अधिक है कि मानव-जीवन का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जो अछूता रह गया हो। तदनुसार ही इसमें शृगार, वीर, शान्त, हास्यादि सभी रसों का निर्वाह किया गया है। विषय-विवेचनानुसार शृगार-रस की प्रधानता है।

शब्द हजारे

गुरु जी की स्फुट रचनाओं में शब्दों का विशेष साहित्यिक महत्व है। इनकी रचना रागों के आधार पर हुई है। शब्दों की कुल सख्या १० है। इन शब्दों में श्री गुरु जी ने सन्यास, योग, ईश्वर-भक्ति तथा काल-पुरुष के नाम स्मरण की चर्चा की है। इनमें छठा शब्द विशेष महत्व का है। अन्य शब्द तो ब्रज में हैं पर यह पजाबी में है। इस शब्द द्वारा गुरु जी ने अपनी गहन व्यथा प्रकट की है :—

"मित्र पियारे नूं हाल मुरीदां दा कहणा ।"

इसमें शान्त के साथ करुणा की झाँकी भी देखने को मिलती है। यद्यपि शब्दों की सख्या अधिक नहीं है पर काव्य-कला की दृष्टि से ये थोड़े से भी

---

१. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रन्थ, पृ० ११४।
२. दि पोयट्री आफ दशम ग्रन्थ, पृ० १५०-५१।

अवतारो का वर्णन किया है। उनके नाम क्रमश :—वाल्मीकि, कश्यप, शुक्र, बृहस्पति, व्यास, पट्ऋषि और कालिदास[1] मिलता है।

प्रस्तुत रचना की भाषा ब्रज है जिसमे फारसी शब्दो का प्रभाव है। इसमे शान्त रस की प्रधानता है।

रुद्र अवतार :

इस प्रबन्धात्मक-काव्य मे कुल २३ परिच्छेद है और छंद सख्या ४६८ है। सम्पूर्ण रचना मे ईश्वर के गुणो के सम्बन्ध मे काफी पुनरावृत्ति मिलती है। रुद्र अवतार की भाषा 'ब्रज' है। 'अवधी' के शब्द भी कही-कही दिखाई दे जाते हैं। यह रचना भाषा तथा भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से उच्चकोटि की है।

पारसनाथ अवतार :

इसका वर्णन पटियाला सेन्ट्रल पुस्तकालय के हस्तलिखित संग्रह-ग्रन्थ से प्राप्त होता है। इस रचना में वीररस की प्रधानता है। शृंगार और शान्त रस का भी यथोचित प्रयोग मिलता है। इसकी भाषा ओज-माधुर्य मिश्रित 'ब्रज' है। इस रचना मे कवि के शब्द और छन्द प्रयोग की विशेषता द्रष्टव्य है।[2]

शस्त्र नाममाला :

इस कृति मे विविध प्रकार के शस्त्रो के नाम जो तत्कालीन युद्धो मे प्रयुक्त होते थे, दिये गये हैं। इस ग्रन्थ मे प्रत्येक शस्त्र का साधारण वर्णन मात्र ही नही किया गया अपितु उसको प्रयोग करने वाले देवता और राक्षसो से सम्बन्धित प्रकरणो के निर्देश भी किए गए हैं। सम्पूर्ण रचना 'दृष्टकूट' शैली मे लिखी गई है। ग्रन्थ उस युग की सर्वप्रचलित 'ब्रज' भाषा में लिखा गया है।

ज्ञान-प्रबोध :

इस रचना मे ३३६ पद लिखित मिलते हैं। इसका आधार 'महाभारत'

---

१. ए हिस्ट्री आफ् दि सिक्खस, पृ० ३२६।
२. दि पोयट्स आफ् दशम ग्रन्थ, पृ० १२८-१२६।

सिहरफें :

इनमें कुल ११ सिहरफें मिलती हैं। इनकी भाषा ब्रज और फारसी मिश्रित है।

इस प्रकार से यह स्पष्ट हो जाता है कि दशम गुरु श्री गुरु गोविन्द-सिंह जी की रचनाएँ विषय की विविधता ही नहीं वरन् शैलीगत-सौन्दर्य की दृष्टि से भी हिन्दी-साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। उस सामन्ती वातावरण में जब धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक तीनों ही की दृष्टि से समाज पतनोन्मुखी था उस समय में गुरु जी का साहित्य जन-हिताय व उन्हें स्वतन्त्रता की ओर उन्मुख करने में समर्थ रहा। विभिन्न छन्दों तथा रसों में अपने भावों को अभिव्यक्त करने की अपूर्व शक्ति आप में विद्यमान थी। उनके काव्य की भाषा सरल-सुबोध पर साथ ही अत्यन्त गूढ़ भावों को स्पष्ट रूप में व्यक्त करने का सामर्थ्य रखती थी। उनमें शृंगार के उज्जवल स्वरूप, भक्ति-भाव विह्वल स्थिति, वीरत्व का ओजपूर्ण चित्रण एवं उपाख्यानों की उदात्त उपदेशात्मकता का इतना सुंदर रूप में संयोजन हुआ है जो अन्यत्र कठिनता से ही मिलता है। 'जाप जी' काव्य में भावपक्ष के समान कलापक्ष भी उच्च है। रीतिकाल के प्रभाव से गुरु जी की कविता में चमत्कार और सूक्ति प्रयोग हुए तो हैं परन्तु उनमें ही कवि ने अपनी सारी प्रतिभा नहीं लगा दी। कलात्मकता का उपयोग गुरु जी ने साध्य नहीं अपितु साधन के रूप में किया है।

बहुत महत्त्वशाली है। संगीत, भाव-गांभीर्य और रचना-कौशल्य की दृष्टि से ये अनूठे हैं और [illegible]-काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण।'[1]

सवैया :

प्रकाशित ग्रन्थों में श्री गोविन्दसिंह जी के ३३ सवैये प्राप्त होते हैं। परन्तु डा० [illegible] और श्री रणधीरसिंह जी इनकी संख्या ३२ मानते हैं।

इस मुक्तक रचना में ईश्वर की महिमा तथा उसके स्वरूप का गुणगान किया गया है। दशम गुरु जी की इस स्फुट रचना में काव्य-कला के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। इनमें सरल प्रवाहपूर्ण ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। भक्ति-भावना के लिए प्रयुक्त सवैया छन्द में अद्भुत काव्य-कुशलता का परिचय गुरु जी ने इस रचना में दिया है।

सवैया जो किछु लेखु लिखियो बिधना

तीन सवैये और एक दोहा, हस्तलिखित तथा प्रकाशित ग्रन्थों में मिलते हैं। इनमें गुरु जी ने निम्न दलित-वर्ग के लिए अगाध स्नेह और उदारता की भावना को प्रकट किया है।

जफरनामा :

जफरनामा फारसी भाषा की रचना है। यह दो भागों में विभाजित है और कुल १११ बैंत-छन्द मिलते हैं। प्रथम भाग में ईश्वर की सर्वव्यापकता और उसके विविध गुणों के स्मरण का उपदेश है। उत्तरार्द्ध में गुरु जी ने औरंगजेब से उसके अन्याय और अत्याचार का निर्देश किया है।

यह एक पत्र के रूप में है और गुरु जी का अन्तिम ग्रन्थ माना जाता है। इसका रचनाकाल संवत् १७६३ (सन् १७०६ ई०) के लगभग माना जाता है। जफरनामा' की भाषा फारसी है। यह रचना गुरु गोविन्दसिंह जी के फारसी भाषा पर भी पूर्ण अधिकार का प्रमाण है। इसकी छन्द-योजना फिरदौसी निज़ामी द्वारा प्रयुक्त चौबोला छन्द[1] में हुई है।

---

१. गुरु गोविन्दसिंह और उनका काव्य, पृ १८३।

१. 'फाऊलन'।

सम्प्रदायिक रूप आलवार संत शठकोप' कृत 'सहस्र गीति' के छन्दों में दिखाई देता है ; और तब से निरन्तर विकासोन्मुख है।

विकास की उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं में पुरुषोत्तमता के साथ ही राम की अवतार-कल्पना के भी सूत्र मिलते हैं।[1]

अन्य अनेक विधाओं की भांति 'राम-काव्य' भी हिन्दी को उत्तराधिकार के रूप में संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश भाषा से प्राप्त हुआ है। राम का महत्त्व सर्व-प्रथम हमें 'वाल्मीकि-रामायण' में मिलता है। इसकी आकर्षक कथावस्तु ने भारतीय जनता को इतना अधिक प्रभावित किया कि उसके आदर्श नायक राम को लेकर कई राम काव्यों की रचना हुई। 'राम' ने उत्कृष्ट-काव्यों तथा सरल लोकगीतों आदि सभी रूपों में अतुल सम्मान प्राप्त किया है।[2] वाल्मीकि के बाद जयदेव कृत 'प्रसन्न राघव', कालिदास कृत 'रघुवंश', भास कृत 'प्रतिमा नाटक' तथा भवभूति कृत 'उत्तर रामचरित' ग्रन्थों द्वारा यह परम्परा आगे बढ़ी। इन रचनाओं के अतिरिक्त भट्टि कृत 'रावण वध', कविराज की 'राघव पाण्डवीय' और राजशेखर कृत 'बाल रामायण' आदि भी इसी परम्परा की पुष्टि करती हैं।

इसके बाद आगे चल कर हमें बौद्ध-साहित्य में भी 'राम-कथा' के दर्शन होते हैं। दशरथ जातक, अनामक जातक, देव-धम्म जातक, साम जातक आदि राम-कथा के उदाहरण हैं।

इसके बाद अपभ्रंश साहित्य में राम-कथा के दो सम्प्रदाय हमें मिलते हैं— विमल सूरि तथा गुणभद्राचार्य। विमल सूरि की परम्परा में ही आगे चल कर स्वयंभू देव ने 'पउम-चरिउ' तथा गुणभद्राचार्य की परम्परा में आगे चल कर पुष्पदंत ने 'पदम् पुराण' की रचना की। आचार्य हेमचन्द्र की जैनरामायण भी इसी राम-कथा के अन्तर्गत आती है।

महाभारत में भी राम कथा का वर्णन मिलता है। कहीं-कहीं उपमाओं के लिए इस काव्य में राम-कथा के पात्रों का उल्लेख मिलता है।[3]

रामायण-महाभारत की राम-कथा से आगे चल कर हिन्दी में भी गौरव-

---

१. [illegible]
२. राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० [illegible]।
३. रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ० ५०।
४. रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ० [illegible]

द्वितीय प्रकरण

हिन्दी राम-काव्य और उसमें गुरु गोविन्दसिंह का स्थान

भारतीय संस्कृति के समष्टि रूप के प्रतीक रूप मे हम मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र को रख सकते हैं। इस महापुरुष का चरित्र युगों-युगों से जातीय-जन-जीवन का प्रधान प्रेरणा केन्द्र रहा है। इसकी लोकप्रियता का यही यथेष्ठ प्रमाण है कि भारत की प्रान्तीय भाषाओ, वृहत्तर भारत एव पड़ोसी देशो की जन-भाषाओं में भी, राम-कथा को लेकर एक विशाल साहित्य रचा गया है।[1] समय की गति के साथ-साथ कवियों की व्यक्तिगत रुचि और सांस्कृतिक आदर्शानुसार राम का चरित्र भी नव-साचो मे ढलता व परिष्कृत होता रहा है।

सम्पूर्ण राम-काव्य पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो हमे इस विकास की तीन अवस्थाए स्पष्ट रूप मे लक्षित होती हैं :—

१. ऐतिहासिक,

२. साहित्यिक, तथा

३. साम्प्रदायिक।[2]

राम के ऐतिहासिक रूप की प्रधानता 'वाल्मीकि रामायण' के मूल रूप का रचनाकाल (३०० ई० पू०)[3] से लेकर चौथी शती मे प्राचीन पुराणो के निर्माण तक के समय मे मिलता है। साहित्यिक रूप की प्रमुखता कालिदास कृत 'रघुवंश'[4] से लेकर कुमारदास के 'जानकी हरण'[5] के समय तक रही। राम का

---

१. राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय : डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह, पृ० ३२।

२. वही, पृ० ३३।

३. वही, पृ० ३३।

४. ४०० ई०।

५. ८वीं शती।

पूर्व का राम-काव्य-साहित्य अधिक विपुल नहीं है। स्वामी रामानन्द जी के राम-भक्ति विषयक कुछ पद यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं तथा सूरदास जी ने भागवत की कथाओं का वर्णन करते समय प्रसंगस्वरूप रामकथा का उल्लेख नवम स्कन्ध में किया है। महाकवि चन्द विरचित 'पृथ्वीराज रासो' के द्वितीय समय में भी दशावतार कथा में राम विषयक कुछ पद मिलते हैं। 'रासो' के इस समय में लंका-युद्ध को अधिक महत्त्व दिया गया है। इनके अतिरिक्त कवि [illegible] कृत 'रामचरित रामायण'[1] तथा ईश्वरदास कृत 'राम जन्म,' 'अंगद पैज' मिलते हैं। इनकी एक अन्य कृति 'भरत-मिलाप' में भरत को आदर्श दास्य-भक्त के रूप में चित्रित किया गया है।[2] इनके पश्चात् इस परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास जी आते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी की सभी कृतियाँ उनके इष्टदेव राम से सम्बन्ध रखती हैं। आपने राम-साहित्य द्वारा जो एक अमूल्य वस्तु हिन्दी-साहित्य तथा भारत के जन-जीवन को सौंपी है वह है एक सम्पूर्ण आदर्श जीवन का रूप। आदि कवि वाल्मीकि ने जिस कल्पना को प्रस्तुत किया था उसी का परिष्कृत रूप हमें तुलसी साहित्य में देखने को मिलता है। तुलसीदास जी की रचनाएँ रामलला नहछू, बरवै रामायण, विनय-पत्रिका, जानकी मंगल, रामाज्ञा प्रश्न कवितावली, गीतावली, रामचरित मानस आदि हैं। परन्तु इनमें से 'रामचरित मानस' ही सर्वाधिक लोकप्रिय है। 'रामचरित मानस' तुलसी जी की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इस रचना के विषय में तुलसी जी के समकालीन कवि रसखान की उक्ति—

"हिन्दुवान को बेद सम यवनहि प्रगट कुरान"

से ही इसकी श्रेष्ठता का परिचय मिल जाता है। मानस उनके जीवन के कटु तथा मधुर अनुभवों, ज्ञान-विज्ञान, उत्साह—सबका निष्कर्ष है।[3] डॉ० कामिल बुल्के जी ने इस ग्रन्थ के विषय में कहा है —

"इसी एक रचना के द्वारा हिन्दी-प्रदेश में राम-भक्ति की धारा फैल गई

---

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३४४।
२. राम कथा, पृ० २४१।
३. राम चरित मानस और साकेत : परमलाल गुप्त, पृ० २।
रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ० १२०।

और आज तक प्रवाहित होती रही। अतः राम-भक्ति के विकास में रामचरित मानस का महत्व अद्वितीय है।"[1]

तुलसी के समकालीन मुनिलाल की रचना 'रामप्रकाश' का वर्णन भी साहित्य में आता है। इसके पश्चात् हिन्दी राम-काव्य परम्परा में केशव की 'रामचन्द्रिका' का नाम आता है।

रामचन्द्रिका पर यद्यपि अनेक संस्कृत ग्रन्थों का प्रभाव है पर उसकी कथा वाल्मीकि रामायण पर ही आधारित है।[2] 'रामचन्द्रिका' तुलसी कृत 'मानस' और परवर्ती रीतिकालीन-साहित्य के बीच की कड़ी है। भक्ति-काल तथा रीतिकाल--दोनों युगों की प्रवृत्तियों का समन्वय हम इस ग्रन्थ में देख पाते हैं। डा० गार्गी गुप्त के शब्दों में हम कह सकते हैं कि :–

" 'रामचन्द्रिका' अलंकृत महाकाव्यों की उस कोटि में आता है जिसमें रीति से मुक्त एवं बद्ध दोनों प्रकार के वर्णनों का प्राचुर्य है और सहायक रूप से पौराणिक तत्त्वों का भी समावेश है। उसमें काव्य के विविध पक्षों तथा धर्म के नाना स्वरूपों का सुन्दर उद्‌घाटन हुआ है। वह काव्य प्रेमियों के लिए काव्य है और धर्म-प्रेमियों के लिए पुराण।"[3]

इसके बाद स्वामी अग्रदास का नाम इस परम्परा में लिया जा सकता है। आप तुलसी के समकालीन थे। अग्रदास जी रचित 'ध्यान मंजरी' मिलती है, इसमें कुल ६९ पद हैं जिनमें राम और अन्य भाइयों के सौन्दर्य-वर्णन के साथ सरयू नदी व अयोध्या नगरी का भी वर्णन किया गया है। अग्रदास जी के बाद नाभादास जी के कुछ पद मिलते हैं, फिर प्राणचन्द चौहान जी की 'रामायण महानाटक' रचना में वर्णनात्मकता अधिक और काव्य-सौन्दर्य कम है। इनके अतिरिक्त हृदयराम, बलदास, लालदास की गणना की जाती है।

केशव के पश्चात् आचार्य चिन्तामणि का नाम भी राम-काव्य के कवियों में आता है,[4] परन्तु उनकी रचना मिलती नहीं है। इनके पश्चात् रसिक गोविन्द कृत 'रामायण सूचनिका', लछिराम जी की 'रामचन्द्र भूषण' आती है।

१. राम कथा, पृ० २४८।
२. रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ० २३३।
३. वही, पृ० ४५७।
४. हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास, पृ० ८७।

सेनापति रचित 'कवित्त रत्नाकर' की चौथी तरंग में रामकथा का वर्णन मिलता है।[1] सेनापति के पश्चात् १७वीं शती के उत्तरार्द्ध में गुरु गोविन्दसिंह कृत 'गोविन्द रामायण' का नाम है। इसमें गुरु जी ने रामकथा का सुन्दर तथा विस्तृत वर्णन किया है। १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बालभक्त तथा रामप्रियाशरण का नाम आता है। रामप्रिया जी की 'सीतायण' कृति में राम का संक्षिप्त चरित्र तथा सीता व उनकी सखियों का चरित्र प्रस्तुत किया गया है। इनके पश्चात् जानकीरसिकशरण, कलानिधि, रीवा नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह जी का नाम आता है।

तदनन्तर राम सम्बन्धी अनेक प्रबन्ध-काव्य कृतियों की रचना हुई—राम-किशोरशरण की 'रामरसामृत सिन्धु', सूरजराम पंडित कृत 'जैमिनी पुराण', भगवतराय खीची की 'रामायण,' मधुसूदन दास कृत 'रामाश्वमेध', सुमान कृत 'लक्ष्मण शतक', गोकुल नाथ कृत 'सीताराम गुणार्णव', मनियार सिंह की कुछ रचनाएँ, ललकदास कृत 'सत्योपाख्यान', नवल सिंह जी की 'रामचन्द्र विलास' आदि रचनाएँ, बनादास की 'उभय प्रबोधक रामायण', सीताराम शरण के 'राम-रसरंग' में संक्षिप्त राम-कथा का वर्णन हमें मिलता है। इनके अतिरिक्त हिन्दी राम-काव्य परम्परा में प्रेम सखी, कृपाल मिश्र, रामचरण, कृपानिवास, गंगाप्रसाद व्यास उदैनिया, सर्वसुखशरण, भगवानदासी खत्री, गणराम, रामगोपाल, परमेश्वरीदास, पहलवानदास, गणेश, शिवानन्द, दुर्गेश आदि कवियों के नाम भी आते हैं।

महाराज रघुराज सिंह देव जी ने संवत् १९३४ (सन् १८७७ ई०) में 'राम-स्वयम्वर' की रचना की। इसके पश्चात् कविवर रसिकबिहारीलाल जी के 'रामरसायन' का नाम आता है, और फिर जानकीप्रसाद कृत 'रामनिवास रामायण' इस परम्परा में आती है। नवलसिंह प्रधानकृत 'रामचन्द्र विलास' की एक हस्तलिखित प्रति मिलती है।[2]

आधुनिक काल में भी रामचरित को लेकर अनेक काव्यों की रचना हुई है। सन् १९२० में श्री रामचरित उपाध्याय ने 'रामचरित चिन्तामणि' नामक प्रबन्ध-काव्य की रचना की। इस ग्रन्थ में २५ सर्ग हैं और इसकी रचना महा-

---

१. कवित्त रत्नाकर—सम्पादक उमाशंकर शुक्ल।

२. रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ० ४८३।

काव्य के लक्षणों को दृष्टि मे रख कर ही की गई है। उपाध्याय जी की इस कृति में छन्दों का वैविध्य तथा अलंकारों की प्रचुरता दर्शनीय है। संवत् १९९० (सन् १९३३ ई०) में पं० बलदेवप्रसाद मिश्र जी ने १८ सर्गों में 'कौशल किशोर' नामक प्रबन्ध-काव्य की रचना की है। सन् १९३७ में श्री रामनाथ ज्योतिषी जी ने 'श्रीराम चन्द्रोदय' काव्य की रचना की।

आधुनिक काल के राम-काव्यों मे 'साकेत' तथा 'वैदेही-वनवास' प्रमुख हैं। इन दोनों कृतियों मे रामकथा को वर्तमान-युगीन नवीन विचारधाराओं के अनुकूल नवीन रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है। संवत् १९८८ (सन् १९३१ ई०) में उर्मिला के अन्तर्मन के कुशल चित्रकार श्री मैथिलीशरण गुप्त ने दस वर्ष की अनवरत तपस्या के उपरान्त 'साकेत' महाकाव्य को हिन्दी जगत के समक्ष प्रस्तुत किया।[1] 'साकेत' की रचना के मूल में काव्य-उपेक्षिता-उर्मिला को काव्याकाश पर लाना था किन्तु गुप्त जी की राम-भक्ति ने उसे एक अन्य ही रूप मे ढाल दिया। 'साकेत' केवल उर्मिला के आंसुओं की अभिव्यक्ति न होकर राम-काव्य के रूप में ढल गया।[2] 'वैदेही-वनवास' हरिऔध जी का करुण-रस प्रधान काव्य है। सन् १९२६ में पं० बिहारीलाल विश्वकर्मा कौतुक ने 'श्री कौशलेन्द्र कौतुक' नामक राम-काव्य की रचना की। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र कृत 'साकेत सन्त' भी रामकथा सम्बन्धी एक प्रबन्ध-काव्य है। इसमे शृंगार के संयोग-पक्ष तथा वीर रस के सुन्दर उदाहरण देखने को मिलते हैं। देशकाल से प्रभावित होकर इस काव्य की माण्डवी, आधुनिक कृषक-पत्नी के समान भरत के लिए भोजन लेकर जाती है।[3] इसमें भरत के चरित्र को प्रबन्ध-काव्य के नायक के रूप मे गौरवान्वित किया गया है। केदारनाथ मिश्र कृत 'कैकेई' तथा 'नवीन' जी कृत 'उर्मिला' भी इसी परम्परा मे आते हैं। इन सबके अतिरिक्त अन्य छोटी-मोटी रचनाएं भी मिलती हैं।

इस प्रकार राम-काव्य की परम्परा भक्ति-काल से लेकर वर्तमान काल तक निरन्तर हिन्दी-काव्य को अनुप्राणित करती चली आ रही है। हिन्दी के अनेक कवियों ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के पावन चरित्र से प्रेरणा प्राप्त की है। अन्त

१. रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ० ४७६।
२. राम चरित मानस और साकेत, पृ० ५।
३. साकेत सन्त, सर्ग १४।

में गुरु गोविन्दसिंह जी के शब्दों में—

"राम-कथा जुग जुग अटल,
सब कोई भाखत नेत ॥"

हिन्दी-साहित्य में राम-काव्य की परम्परा भक्ति-काल, रीति काल-तथा आधुनिक-काल में अपनी पूर्ण वैभवता के साथ हमें देखने को मिलती है। भक्ति-काल में गोस्वामी तुलसीदास, भक्ति-रीति की युग-सन्धि में केशव और रीति काल में हम गुरु गोविन्दसिंह जी को प्रमुख कवि मान सकते हैं। तुलसीदास जी की सर्वश्रेष्ठता तो सिद्ध है ही, उस पर किसीको कोई आक्षेप नहीं हो सकता। उनके बाद आचार्य केशव का नाम लिया जाता है। अब हमें गुरु गोविन्दसिंह के स्थान का निर्धारण करना है।

रेवरेंड फादर कामिल बुल्के महोदय ने अपनी पुस्तक रामकथा में हिन्दी-साहित्य में राम-कथा प्रसंग में लिखा है कि—"हिन्दी रामकथा साहित्य में तुलसीदास का एक प्रकार से एकाधिकार है।...अत. यहां पर अन्य हिन्दी राम-कथा साहित्य का सिंहावलोकन मात्र प्रस्तुत किया जा रहा है। अन्त में दो अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण प्रबंध-काव्यों की कथानक सम्बन्धी विशेषताओं की सूची भी दी जाएगी।" और यह दो प्रबन्ध काव्य आचार्य केशव कृत 'रामचन्द्रिका' तथा गुरु गोविन्दसिंह कृत 'गोविन्द रामायण' हैं।

गुरु गोविन्दसिंह जी के समय में औरंगजेब के अत्याचारों से जनता ठीक वैसे ही त्रसित थी जैसे कि श्रीराम के समय में रावण से, यह तो उस समय की राजनैतिक परिस्थिति थी, सामाजिक ढांचा भी विभिन्न प्रकार के थपेड़ों से डग-मगा रहा था, उस पर नित नूतन प्रहार हो रहे थे। और जब हम साहित्य की ओर दृष्टिपात करते हैं तो उस समय (रीतिकाल) के प्रत्येक कवि का ध्यान जन- ... कंचन और कामिनी की ओर झुका था। ... राम के रूप को भी तत्कालीन कवियों ने ... र दिया था और उधर औरंगजेब के ... होते जा ... ... हुए। ... ... इधर ...

गोविन्दसिंह जी ने अपनी ओजपूर्ण कविताओं से पुनरुद्धार और पुनर्जागरण का कार्य किया। इस कारण हम आपको हिन्दी-काव्य का दूसरा भूषण भी कह सकते हैं।

रीतिकालीन कवियों ने राम के मर्यादित रूप को भी रसिकता के रंग में रंगने का प्रयत्न किया जो उस समय के राम-साहित्य में स्पष्ट परिलक्षित होता है पर फिर भी राम-काव्य पर से सत-भावना और मर्यादा का प्रभाव एकदम लोप नहीं हुआ। अनेक ग्रन्थों में वह अपने सामाजिक मंगल के रूप में - जीवन के सत्य-स्वरूप को स्पष्ट करता रहा।[1] ऐसे ग्रन्थों में गुरु गोविन्दसिंह कृत 'गोविन्द रामायण' सर्वप्रथम हमारे सामने आती है। इससे कामिल बुल्के महोदय का स्थान निर्धारण उचित ही प्रतीत होता है।

सगुण एवं निर्गुण दोनों ही पंथों के प्रवर्तकों ने राम की महिमा के गीत गाए हैं। कबीर ने जहां निर्गुण राम के नाम को भक्तों का सर्वस्व माना तो तुलसी के 'मानस' में नाम के साथ ही उनके रूप, लीला और धाम की भी आरती उतारी गई। श्री गुरु गोविन्द में हमें यह दोनों ही रूप देखने को मिलते हैं। आप उस सम्प्रदाय के गुरु थे जो निर्गुण निराकार ईश्वर पर विश्वास करता है और आप भी उसे पूर्ण रूपेण मानते थे, साथ ही साकार राम में भी विश्वास करते थे। 'गोविन्द-रामायण' से यह स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह कृत 'गोविन्द रामायण' में हमें सगुण-निर्गुण का समन्वित रूप मिलता है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि राम-काव्य परम्परा में आपका स्थान तुलसी-केशव के पश्चात् आता है।

---

१. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, पृ० [illegible]।

तृतीय प्रकरण

गोविन्द रामायण

(अ) गुरु गोविन्दसिंह के साहित्य में 'गोविन्द रामायण' का स्थान

दशम गुरु श्री गुरु गोविन्दसिंह जी कृत 'दशम ग्रन्थ' में संग्रहीत उनकी सभी रचनाओं का वर्गीकरण हम दो प्रकार से कर सकते हैं। प्रथमतः रचनाओं के वर्ण्य-विषय के आधार पर हम श्री गुरु जी की रचनाओं को—

१. भक्ति,

२. शृंगार,

३. वीर,

४. नीति, तथा

५. बाह्य-दृश्य-चित्रण।

इन पांच भागों में विभाजित कर सकते हैं। द्वितीय प्रकार से हम शैली के आधार पर उनकी रचनाओं को—

१. प्रबन्ध, तथा

२. मुक्तक।

इन दो भागों में विभाजित कर सकते हैं।

प्रथम प्रकार के अनुसार—जापु, अकाल-उस्तति, शब्द हज़ारे तथा सवैया आदि विशुद्ध भक्ति तथा आध्यात्मिक भावना प्रधान रचनाएं हैं। शृंगार तथा प्रेम-भावना के उदाहरण हमें पाख्यान-चरित्र तथा चौबीस अवतारों के वर्णन में मिलते हैं। वीर-रसपूर्ण रचनाओं में हम चण्डी चरित्र, चण्डी दी वार, विचित्र नाटक, शस्त्र नाममाला, गोविन्द रामायण (रामावतार), कृष्ण-अवतार आदि को रख सकते हैं। नीति-उपदेश के उदाहरण अकाल-उस्तति में देखे जा सकते हैं।

द्वितीय प्रकार का विभाजन हम प्रबन्ध और मुक्तक इन दो रूपों में करते हैं। यह दोनों काव्य के मान्य दो प्रमुख भेद हैं। प्रबन्ध-काव्य में कोई

गोविन्दसिंह जी ने अपनी ओजपूर्ण कविताओं से पुनरुद्धार और पुनर्जागरण का कार्य किया। इस कारण हम आपको हिन्दी-काव्य का दूसरा भूषण भी कह सकते हैं।

रीतिकालीन कवियों ने राम के मर्यादित रूप को भी रसिकता के रग में रगने का प्रयत्न किया जो उस समय के राम-साहित्य मे स्पष्ट परिलक्षित होता है पर फिर भी राम-काव्य पर से सत-भावना और मर्यादा का प्रभाव एकदम लोप नही हुआ। अनेक ग्रन्थों मे वह अपने सामाजिक मगल के रूप मे - जीवन के सत्य-स्वरूप को स्पष्ट करता रहा।[1] ऐसे ग्रन्थो मे गुरु गोविन्दसिंह कृत 'गोविन्द रामायण' सर्वप्रथम हमारे सामने आती है। इससे कामिल बुल्के महोदय का स्थान निर्धारण उचित ही प्रतीत होता है।

सगुण एव निर्गुण दोनों ही पथो के प्रवर्तको ने राम की महिमा के गीत गाए हैं। कबीर ने जहां निर्गुण राम के नाम को भक्तों का सर्वस्व माना तो तुलसी के 'मानस' मे नाम के साथ ही उनके रूप, लीला और धाम की भी आरती उतारी गई। श्री गुरु गोविन्द मे हमें यह दोनों ही रूप देखने को मिलते हैं। आप उस सम्प्रदाय के गुरु थे जो निर्गुण निराकार ईश्वर पर विश्वास करता है और आप भी उसे पूर्ण रूपेण मानते थे, साथ ही साकार राम मे भी विश्वास करते थे। 'गोविन्द-रामायण' से यह स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह कृत 'गोविन्द रामायण' मे हमे सगुण-निर्गुण का समन्वित रूप मिलता है।

अन्त मे हम कह सकते हैं कि राम-काव्य परम्परा मे आपका स्थान तुलसी-केशव के पश्चात् आता है।

---

१. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, [illegible]।

२४६ तथा ८६४ पदों में किया गया है, इससे रामावतार की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। इसके अतिरिक्त आत्म-कथा 'विचित्र नाटक' में श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने अपने को 'राम' की वंश परम्परा का सिद्ध किया है।[1] इसमें आपकी रचनाओं में राम तथा उनके चरित्र की महत्ता स्वत: स्पष्ट हो जाती है।

जब हम तात्कालिक राजनैतिक व सामाजिक परिस्थितियों की ओर देखते हैं तो पाते हैं कि औरंगजेब जैसे धूमकेतु के उदय ने शान्त भारत में उपद्रव तथा उत्पात उत्पन्न कर दिए थे और इस दानव-शक्ति के प्रतिकार के लिए—जनता में उत्साह फूंकने के लिए गुरु गोविन्दसिंह बचपन से ही अपने में दिव्यशक्ति जगा चुके थे। आपने बाल्यावस्था से ही ठीक वैसे ही जैसे त्रेता युग में श्रीराम ने असत्य व पाप-अत्याचार पर सत्य व पुण्य की विजय का आदर्श अपनाया था, अपनाया। श्री राम ने इस कार्य के लिए अपना राजपाट त्यागा और १४ वर्षों तक वन-उपवन घूमे, आर्य संस्कृति का प्रसार किया। ठीक वैसे ही जब कश्मीर के पंडित नवम गुरु श्री गुरु तेगबहादुर के पास मुगल सम्राट् औरंगजेब से पीडित हो सहायतार्थ आए तो गुरु जी ने उनके बचाव के लिए किसी महापुरुष की आहुति मांगी, बालक गोविन्दराय वहीं बैठे थे और उन्होंने इस आहुति के लिए अपने पिता को ही योग्य ठहराया। बड़े होने पर उन्होंने स्वयं, अत्याचार तथा अन्याय के विरुद्ध तलवार उठाई और उसे समाप्त करके ही विश्राम लिया —इसके लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। 'राम' का जीवन मानव-जीवन का आदर्श है। भारतीय जन-जीवन को इसने बहुत प्रभावित किया है और—"राम कथा जुग-जुग अटल" है। भारतवर्ष के राष्ट्रीय-जीवन के निर्माण में 'राम' का बहुत बड़ा योग रहा है – और इसी 'राम' के चरित्र को श्री गुरु गोविन्दसिंह महाराज ने अपनी कृति 'गोविन्द-रामायण' में स्पष्ट किया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'गोविन्द रामायण' का गुरु गोविन्दसिंह जी की रचनाओं में प्रमुख स्थान है।

इसके अतिरिक्त काव्य की दृष्टि से भी जब हम 'गोविन्द रामायण' का मूल्यांकन करते हैं तो गुरु जी की इस रचना में हमें उन सभी विधाओं के दर्शन हो जाते हैं जो अन्य रचनाओं में अलग-अलग रूप में मिलते हैं। गुरु गोविन्द-

सिंह के काव्य में वीर और शान्त-रस की प्रधानता मिलती है, इनके साथ तत्कालीन प्रभाव के कारण शृंगार-रस का भी यथेष्ट वर्णन मिलता है। इन सभी के उदाहरण हमें 'गोविन्द रामायण' में मिल जाते हैं। छन्दों तथा अलंकारों की दृष्टि से भी, इनका जितना विस्तार हमें 'गोविन्द रामायण' में मिलता है उतना किसी अन्य रचना में नहीं और यही बात एक प्रबन्ध-पटुता भाव-गाम्भीर्य तथा भाषा-लालित्य की दृष्टि से भी कह सकते हैं, कवित्व की दृष्टि से भी कह सकते हैं। कवित्व की दृष्टि से यद्यपि 'कृष्णावतार' भी उच्च कोटि का है परन्तु सन्त इन्द्रसिंह चक्रवर्ती के शब्दों में हम कह सकते हैं कि —"श्री कृष्ण पर केवल ब्रज की दृष्टि ही काम करती है, परन्तु उनके राम के प्रत्येक काम पर त्रिलोकी की दृष्टि रहती है।"

उपर्युक्त आधारों पर हम गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में से प्रमुख रचनाओं में 'गोविन्द रामायण' को रख सकते हैं।

(आ) प्रामाणिकता

दशम गुरु श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने सन् १६६८ ई० मे रामावतार कथा लिखी है।[1] सन् १६५३ मे इसका प्रकाशन बनारस से सन्त इन्द्रसिंह द्वारा सम्पादित 'गोविन्द रामायण' नाम से हुआ है। श्री गुरु जी ने इस कथा का वर्णन 'दशम ग्रन्थ' मे 'चौबीस अवतार' के अन्तर्गत किया है। इसके रचना-काल का निर्देश ग्रन्थ के अन्त मे किया गया है :

"संवत सत्रह सहस पचावन। हाड़ वदी प्रथमा सुख दावन।"

इससे भी ऊपर वाली तिथि (सन् १६६८) की पुष्टि हो जाती है।

गुरु गोविन्द कृत सभी रचनाए 'दशम ग्रन्थ' मे सकलित हैं, कई विद्वानो ने इनकी प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया है।[2] चौबीस अवतार के अन्तर्गत आई 'गोविन्द-रामायण' (रामावतार) के प्रति भी शकाए उठाई गई है, कि वास्तव में यह गुरु जी की स्वय की रचना है या उन्ही के दरबारी कवियो मे से किसी की रचना है।

---

१. राम कथा, कामिल बुल्के, पृ० २५४।
२. डॉ० मोहनसिंह, गोकुलचन्द नारंग आदि।

आरम्भ मे रामावतार के मूल कारण को स्पष्ट कर, सक्षेप मे र..
फिर दशरथ के पुत्र-जन्म का वर्णन इस प्रकार से किया गया है—

'गोविन्द रामायण' का कथासार

रामावतार

राक्षसो के उपद्रव से तग आकर सभी देवता इकट्ठे होकर क्षीर-सागर मे भगवान के पास गए और उनसे उद्धार करने के लिए प्रार्थना की। देवताओं ने उस परम पुरुष से रघुकुल मे अवतार लेने को कहा।

रघु, अज के पश्चात् दशरथ अयोध्या के सिंहासन पर बैठे। राजा दशरथ को शिकार करना बहुत प्रिय था।

कुहड़ाम के राजा कोशल के घर कौशल्या का जन्म हुआ। युवती कौशल्या ने स्वयवर मे अवध-नरेश दशरथ को अपना पति चुना।

राजा सुमित्र सेन के यहा सुमित्रा ने जन्म लिया। उसने भी स्वयवर मे दशरथ को वरण किया।

इन दोनो रानियो से राजा को कोई पुत्र नही हुआ। तब उसने कैकेय राज की पुत्री कैकेयी से विवाह किया। विवाह के समय कैकेयी ने राजा से दो वर माग लिए। इसके बाद देवताओ के साथ दानवो का युद्ध हुआ। राजा दशरथ ने देवताओ की ओर से युद्ध मे भाग लिया, युद्ध मे राजा के रथ के सारथी के मर जाने पर कैकेई ने रथ को सम्भाला, इस पर वह दोनो वर जो उसने विवाह के अवसर पर मागे थे, दे दिए।

एक दिन राजा दशरथ शिकार की टोह मे जगल मे घूम रहे थे। उसी स्थान पर श्रवण कुमार भी अपने अन्धे माता-पिता को बैठा कर उनके लिए पानी लेने गया। जब श्रवण ने पानी का घडा भरा तो उसकी आवाज राजा दशरथ ने भी सुनी और मृग को जल पीने आया जान उन्होने तीर उसी ओर चलाया। वह तीर श्रवण को जाकर लगा। जब राजा दशरथ वहा पहुचे तो मृग के स्थान पर श्रवण को वहा पर अपने तीर से आहत हुआ पाया। श्रवण ने प्राण छोड़ते हुए राजा से प्रार्थना की कि वह उसके माता-पिता को ले जाकर पानी पिलाए। *और राजा से प्रार्थना की कि वहां आकर बोलना मत।* राजा को श्रवण की मृत्यु का बहुत पश्चात्ताप हुआ। अन्ततः

जाने पर नव-प्रकाशित ग्रन्थों में इसका विवरण प्राप्त होता है।[1] श्री परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि—"गुरु गोविन्दसिंह की भी रचनाएं संख्या में बहुत हैं और वे विभिन्न प्रकार की भी हैं। ये सिक्खों के 'दशम ग्रन्थ' में संगृहीत हैं। इन्हीं में उनकी रचना 'गोविन्द रामायण' भी आती है।"[2] डा० गार्गी गुप्त इसके विषय में लिखते हैं :

"सेनापति के पश्चात् सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुरु गोविन्दसिंह ने 'गोविन्द रामायण' की रचना की जिसमें राम-कथा का सुन्दर तथा विस्तृत वर्णन है।"[3]

अतः इसकी प्रमाणिकता में सन्देह नही रहता।

'गोविन्द रामायण' 'दशम ग्रन्थ' के 'चौबीस अवतार' में रामावतार की कथा है। यह वर्णन गुरु रामदास पुस्तकालय, अमृतसर के हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ[4] में तथा सेन्ट्रल लाइब्रेरी पटियाला के संग्रह-ग्रन्थ[5] में मिलता है। सम्पूर्ण अवतार ८६४ छन्दों में वर्णित है। 'गोविन्द रामायण' की रचना अनेक प्रकार के छन्दों[6] में हुई है, इनमें से कई तो ऐसे है जो बहुत दिनों से प्रचलित नही हैं। विषय का विभाजन अन्य रामायणों की भांति कांडों के अनुसार न होकर विभिन्न २२ शीर्षकों में किया गया है। इनमें सबका विस्तार भी एक समान नही है।

---

१. संस्कृति के चार अध्याय : श्री रामधारीसिंह दिनकर, पृ० ३२२;
"उन्होंने एक रामायण भी लिखी थी—अभी हाल ही में गोविन्द रामायण के नाम से प्रकाशित हुई है।"
'राम कथा पर सुन्दर खंड काव्य लिखा' वही, पृ० ३२६;
"गोविन्द रामायण में राम कथा का सुन्दर और विस्तृत वर्णन है,
यह ग्रन्थ हाल में ही प्रकाश में आया है।"
—हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ०४६।

२. भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएं : परशुराम, पृ० १५०।

३. राम काव्य की परम्परा में रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, डॉ० गार्गी गुप्त, पृ० ४६३।

४. ग्रन्थ संख्या ११८६।

५. ग्रन्थ संख्या ७६६, ७५६, २२२४ तथा २५६२।

६. ६७ प्रकार के।

राम से कहा कि शिव के धनुष को तोड़, सीता का वरण करो और राम को साथ ले मिथिला नगरी पहुंचे। वहीं पर सभी ने अपनी भावनाओं के अनुरूप राम को देखा। सीता व राम का एक दूसरे को देखते ही प्रेम हो गया।

दूतों ने लाकर धनुष को सभा में रखा, राम ने उसे उठा कर तोड़ दिया। इस पर सभी अत्यधिक प्रसन्न हुए और सीता ने राम के गले में वरमाला डाल दी। *सीता अत्यन्त रूपवती तथा मोहिनी हैं। सीता लाज-भरी आंखों से राम* की ओर निहार रही हैं। सुन्दर राम भी प्रेम-विभोर हो गए।

परशुराम को जब इस बात का पता चला तो वे अस्त्र-शस्त्र से युक्त वहां पहुंच गए और राम को ललकारा। परशुराम की ललकार सुन युद्ध की तैयारी होने लगी और नगाड़े-रणभेरी आदि रण-वाद्य बजने लगे। घनघोर युद्ध हुआ, अप्सराएं भी वीरों का वरण करने हेतु सुसज्जित हो वहां पहुंच गईं। परशुराम कई वीरों के गर्व का हरण कर आगे बढ़े, क्रोध में पृथ्वी पर पांव पटकते हुए शिवभक्त परशुराम ने सभी योद्धाओं के गर्व को चूर-चूर कर दिया। अन्त में राम के समीप पहुंच उसे शिव धनुष तोड़ने पर भला-बुरा कहा और युद्ध-क्षेत्र से भाग जाने को कहा। राम ने वैरी (परशुराम) को बात सुन अपना बल प्रदर्शन किया। तब कुछ वाद-विवाद के पश्चात् परशुराम ने राम से नारायण रूप दिखाने को तथा धनुष का चिल्ला उतार कर तथा चढ़ा कर दिखाने को कहा। राम ने क्षण भर में यह सब कुछ करके दिखा दिया और चढ़े हुए बाण से परशुराम की आकाश-गति समाप्त कर दी और युद्ध में परशुराम से विजय प्राप्त की।

अथ अवध प्रवेश कथनम्

राम-परशुराम से विजयी हुए तब परशुराम भी एक टक भगवान राम की सुन्दर छवि निहारने लगे।

परशुराम के धनुष को चढ़ाते राम को देख [illegible] भी मन में [illegible] से भयभीत हो गईं।

जब दशरथ ने अयोध्या के [illegible] को [illegible] तब बहुत प्रसन्न हुए और बहुत सा दान दिया। अयोध्या के [illegible] को [illegible] हुई और राम के आगमन के [illegible] । [illegible] में [illegible] उत्साह दिखाया। राम के [illegible] ने [illegible]

भावी बलवान जान वह पानी लेकर श्रवण के माता-पिता के पास पहुचे। श्रवण के माता-पिता के पूछने पर राजा दशरथ ने सारी कथा कही। उसे सुन कर उन दोनो ने राजा दशरथ से चिता बनाने को कहा और योगाग्नि से जलते-जलते राजा दशरथ को भी पुत्र-वियोग मे प्राण त्यागने का शाप दे गए।

राजा उस शाप से सशकित हो सोच-विचार मे पड़े हुए थे कि विष्णु उनके घर अवतार लेगे, ऐसी आकाशवाणी हुई। उसको सुन राजा राजधानी वापिस आ गए और गुरु वसिष्ठ को बुला राजसूय-यज्ञ प्रारम्भ किया। इस यज्ञ मे सभी राजाओ ने आकर दशरथ की अधीनता स्वीकार कर ली।

तत्पश्चात् बहुत समय तक यज्ञ करने के बाद यज्ञ-कुण्ड से यज्ञ-पुरुष प्रकट हुए और उन्होंने राजा दशरथ को खीर का पात्र दिया। राजा ने उस खीर के चार भाग कर अपनी रानियो मे बांट दी। तीनों रानियां गर्भवती हुईं और तेहरवें मास सन्तो के रक्षक राम का अवतार हुआ; और बाद मे भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। राजा के घर पुत्रों के जन्म से चहुं ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई और उत्सव मनाए जाने लगे।

आयु प्राप्त करने पर राजा ने अपने राजकुमारों को शस्त्र व शास्त्र की सभी विधिया सिखलाईं।

ऋषि विश्वामित्र ने पितरो की प्रसन्नता के लिए 'पितृ-तोष' नामक यज्ञ प्रारम्भ किया। राक्षसो ने उस यज्ञ मे विघ्न डाला। विश्वामित्र इससे क्रोधित हो उठे और दशरथ के पास अयोध्या मे पहुच कर राजकुमारो को सहायतार्थ मांगा। इस पर राजा ने अपने दो पुत्रों को मुनि की सहायतार्थ उनके साथ कर दिया।

मार्ग में राम ने ताड़का नामक राक्षसी और उसके साथी कई राक्षसों को मारा। यज्ञ-भूमि पहुचने पर सुबाहु और मारीच नामक राक्षसों ने आक्रमण किया। सुबाहु व मारीच की सेना के साथ राम ने भयकर युद्ध किया; राक्षस राम से हार कर भाग गए। सुबाहु ने पुन. सैन्य संगठन किया और युद्ध के लिए सामने आ डटा। अन्त मे द्वन्द्व-युद्ध मे सुबाहु की मृत्यु हुई और उसकी सारी सेना भाग गई। ऋषियो ने तब बिना किसी बाधा के यज्ञ पूर्ण किया।

सीता-स्वयंवर

मिथिला नगरी मे सीता का स्वयंवर रचाया गया; मुनि विश्वामित्र ने

[illegible] । [illegible] ही राम का स्मरण करते रहो और [illegible] करने लगे ।

[illegible] ।

[illegible] । [illegible] राम वन में आते [illegible] । [illegible] के लिए [illegible] है । [illegible] को देख [illegible] हो जाते हैं ।

[illegible] पहुँच जाते हैं ।

विराध नामक राक्षस राम को देख उन्हें भोजन बनाने को लालायित हो उठा, राम भी उनसे युद्ध करने को तत्पर हो गए और दोनों के बीच भयानक युद्ध छिड़ गया ।

वसुंधरा [illegible] फट गई और चहुँओर योगिनियों को मन भावनी वस्तुएँ मिलने लगी । भूत, बैताल, योगिनिगण आदि सभी बहुत प्रसन्न हो रहे थे । भयंकर युद्ध हुआ और अन्त में विराध मारा गया ।

अथ वन में प्रवेश कथनम्

विराध को मार कर सीता सहित राम अगस्त्य ऋषि के आश्रम में पहुँचे, मुनि ने राम को बाण भेंट में दिए और राम ने वहां के राक्षसों को मार कर मुनियों के कष्टों को दूर किया ।

राम तब मुनियों से आशीर्वाद प्राप्त करने के पश्चात् लक्ष्मण व सीता सहित निःसंकोच भाव से वन में आगे बढ़े । तीर्थों पर स्नान करते हुए तब राम गोदावरी के तट पर पहुँचे और भाई सहित स्वयं को पवित्र किया ।

श्री राम के सौन्दर्य से प्रभावित होकर उस क्षेत्र के रक्षक ने स्वस्वामिनी शूर्पनखा को इनके आगमन की सूचना दी । शूर्पनखा वहां पहुँच राम के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गई और उनसे प्रणय-याचना की । राम ने उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया । पर जब लक्ष्मण ने भी उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया तो स्वयं को अपमानित समझ क्रोधित हो वह अपने घर चली गई ।

अथ खर-दूषण दैत्य युद्ध कथनम्

शूर्पनखा अपने भाई रावण के पास जाकर रोई तो उस समय सभी क्रोधित हो उठे । रावण ने तब मन्त्रणा कर खर-दूषण नामक वीरों को प्रतिशोध लेने

ीता सुन्दरता मे अद्वितीय है। चकोर उन्हें चन्द्रमा, ऐरावत के वशज तथा योगी गगा के रूप मे उन्हे देखते हैं।

राम के वन चले जाने पर कौशल्या का चित्त स्थिर नही रहता, वे स्वय ावास का विचार करने लगती हैं।

ाम के विरह मे दशरथ प्राण त्याग देते है, तब वशिष्ठ मुनि भरत के पास जते हैं। और इधर अयोध्या मे सभी लोग मन्त्रणा करते हैं, दूतो ने ो राजा दशरथ के स्वर्गवास की सूचना व पत्र दिया, पत्र पढ़ते ही भरत हो उठे व उसी क्षण ननिहाल (कश्मीर) छोड़ कर राम का नाम लेते ड़ पड़े।

योध्या पहुँचने पर जब सभी बातो की पुष्टि हो गई तो भरत अपनी ैकई को धिक्कारते है कि उसी के कारण यह सारा अनर्थ हुआ है। स्वयं न राम के पास ही जाकर रहने को कहते हैं। राम के वियोग मे भरत भी अच्छा नही लगता और वल्कल धारण कर तथा पिता का अंतिम करने के उपरान्त अयोध्या छोड़ दी।

ल तथा स्थल मार्ग को मुनियों सहित पार करते हुए भरत वहा पहुँचे ाम निवास कर रहे थे।

ब राम ने सेना-सी भीड़ देखी तो क्रोधित हो धनुष-बाण उठा लिया। स प्रकार राम की भयानक मूर्ति को देख काप उठे; भरत ने तब मन मे क सम्भवत. उसे सबके साथ देख राम के मन मे कुछ सन्देह उत्पन्न हो तो उन्होने सभी को वहीं रोक दिया तथा अकेले ही आगे बढ़े और चरणो पर शीश रख दिया, भरत को ऐसा करते देख शत्रुघ्न ने भी किया। श्रीराम और लक्ष्मण को इससे ज्ञात हो गया कि राजा दशरथ हो गई है।

त ने राम से घर लौट चलने को कहा पर राम ने कहा कि अब तो तेरह वर्ष भी इसी तरह से वन मे व्यतीत करके ही अयोध्या लौटेंगे। त से वापिस लौट जाने को कहा क्योंकि भरत के बिना सभी माताएँ हो रही होंगी। राम ने भरत से कहा कि अभी उन्हें बहुत से कार्य इस कारण भरत वापिस राज्य को लौट जाए, तब राम की खड़ाऊँ

भेजा। ये दोनों सेना सजा कर लड़ने के लिए चल पड़े। चारों ओर मारो-मारो
की ध्वनि सुनाई देने लगी। उस भयंकर युद्ध में दोनों भाई (राम-लक्ष्मण)
अत्यन्त वीरता से लड़े, उनके बाण तक्षक सांप का रूप धारण किए थे। देव
व दानव दोनों युद्ध देख रहे थे व अपने-अपने पक्ष की जय-जयकार कर रहे
थे। डाकिनियां व भूतगण भयंकर शब्द कर रहे थे। राम व लक्ष्मण ने खर
दूषण को मार दिया। देवताओं ने प्रसन्न हो उन दोनों पर पुष्प-वर्षा की।

अथ सीता-हरणम् :

खर-दूषण की मृत्यु हो जाने पर रावण मारीच के पास गया और उससे
कहा कि शूर्पनखा के अपमान के बदले में वह स्वयं योगी बन कर सीता को
चुरा लाएगा। मारीच ने उसे समझाया कि राम वास्तव में अवतार हैं। उनसे
बैर लेना ठीक नहीं। रावण इस पर बहुत क्रोधित हुआ और मारीच को जबर
दस्ती अपनी सहायता के लिए साथ ले गया। मारीच ने भी राम के हाथों
मरना अच्छा समझा और स्वर्ण मृग बन उस वन की ओर चला जहां राम
रहते थे।

सीता उस स्वर्ण-मृग पर मोहित हो गई और राम से उसे ला देने की
प्रार्थना करने लगी। राम ने इस पर सीता को समझाया कि यह सब छल-
प्रपंच है, पर सीता को उस मृग पर लालायित देख स्वयं मृग लाने चल पड़े
और लक्ष्मण से सीता की रक्षा करने को कह गए। मारीच ने मरते समय
लक्ष्मण तथा सीता के नाम की गुहार लगाई। सीता ने इस आवाज को राम
की आवाज समझा और लक्ष्मण को सहायतार्थ भेजा। लक्ष्मण एक रेखा कुटिया
के चारों ओर खींच उधर चले जिधर राम गए थे।

इधर रावण योगी-वेश में अलख जगाता हुआ वहां भिक्षा मांगने आया और
सीता से कहा कि वह तब भिक्षा ग्रहण करेगा जब वह रेखा मिटा कर देगी।
जब सीता ने ऐसा ही किया तो उसने झटपट सीता को उठाया और आकाश
मार्ग से उड़ चला।

अथ सीता खोज कथनम् :

राम और लक्ष्मण ने वापिस आने पर कुटिया खाली दे
चय किया कि अवश्य ही सीता को कोई उठा कर ले गया है

रावण ने तब कई दूतों को कुम्भकर्ण को जगाने के लिए भेजा। कई प्रकार के प्रयत्नों के पश्चात् कुम्भकर्ण की नींद टूटी। सारी बात जानने के पश्चात् वह सेना को ले युद्ध क्षेत्र की ओर चला। उसे देख पहले तो वानर-सेना भागने लगी। तब श्री राम ने सभी को धैर्य धारण कराया और स्वयं कुम्भकर्ण की सेना को तीरों से बींधने लगे। श्री राम के युद्ध करते ही युद्ध-देवी स्वयं रण-क्षेत्र में आ उपस्थित हुई, भैरव बोलने लगे। अप्सराएँ उस युद्ध में वीरों का उत्साह बढ़ा रही थीं। वीरों की तलवारों के टकराने से चिंगारियां छूट रही थीं। वानरराज सुग्रीव कुम्भकर्ण से युद्ध कर रहे थे। उन्होंने एक पहाड़ उठाकर कुम्भकर्ण पर प्रहार किया। उसकी चोट वह न सह सका और गिर पड़ा, श्री राम ने तीरों की वर्षा की और कुम्भकर्ण भी समाप्त हो गया। रावण को जब यह समाचार मिला तो वह मूर्छित हो गया।

अथ त्रिपुण्ड-युद्ध कथनम् :

रावण ने तब त्रिपुण्ड के साथ सेना भेजी। हनुमान ने उसी की तलवार से उसको मौत के घाट उतार दिया।

अथ महोदर मंत्री युद्ध कथनम् :

रावण ने तब अपने मन्त्री महोदर के साथ सेना को भेजा। महोदर ने वीरता से युद्ध किया। चहुँ ओर युद्ध के कारण धरती लाल ही लाल दिखायी दे रही थी। वीर-रस बिखरा पड़ा था। पैंतरे बदल-बदल कर वीर योद्धा एक-दूसरे से जूझ रहे थे। युद्धस्थल में अप्सराएँ घूम रही थीं जो वीरों का वरण कर रही थीं। इस युद्ध में महोदर मारा गया और इन्द्रजीत क्रोध में भरा हुआ वापिस चला गया।

अथ इन्द्रजीत युद्ध कथनम्

इन्द्रजीत तब युद्ध हेतु आया, रणभूमि रण-वाद्यों की आवाज से गूंजने लगी, वीर एक दूसरे से जूझने लगे। आकाश में अप्सराएँ उस युद्ध को कौतूहल से देख रही थीं। मेघनाद (इन्द्रजीत) अपना शौर्य व रणकौशल दिखलाने लगे। उस युद्ध में बाणों की वर्षा हो रही थी। मेघनाद रण-विद्याओं में पारंगत था, उसके युद्ध-बाणों के आघात से श्री रामचन्द्र भी मूर्छित से हो गए। तब रावण

के पास जा दूतों ने यह समाचार दिया तब वह बहुत प्रसन्न हुआ और त्रिजटा को बुला उसे सीता को यह संवाद देने को कहा कि सीता को रणभूमि में ले जाकर मूर्छित राम दिखलाओ। त्रिजटा सीता को वहाँ ले गई।

सीता राम को इस प्रकार की दशा में देख क्रोधित हुई और नाग-मन्त्र द्वारा श्री राम को नाग-पाश से मुक्त कर दिया। सीता इस कार्य को कर उसे ही वहाँ से हटीं तत्क्षण राम दल-बल सहित उठ खड़े हुए और पुनः युद्ध-वाद्य बजने लगे।

इन्द्रजीत को जब यह ज्ञात हुआ तो वह निकुम्भल नामक स्थान पर हवन करने चला गया। विभीषण को इस बात का पता चल गया और उसने राम को इसकी सूचना दी। इधर जब मेघनाद ने अपने शरीर के टुकड़े काट-काट कर यज्ञ प्रारम्भ किया, तभी लक्ष्मण वहाँ पहुंच गया और उसने मेघनाद को मार दिया।

अथ अतिकाय दैत्य युद्ध कथनम् :

रावण मेघनाद वध से बहुत क्रोधित हुआ व उसने सभा बुलाई। सभी वीर एकत्रित हुए और राम के साथ युद्ध करने युद्ध-भूमि की ओर चले। मकराक्ष नामक राक्षस गरजने लगा। अतिकाय क्रोध में हुंकारने लगा। भयंकर-युद्ध इस प्रकार से हो रहा था कि मानो साक्षात् काली वहाँ नृत्य कर रही हों। अतिकाय और लक्ष्मण का आपस में भयंकर युद्ध हो रहा था, दोनों वीर युद्ध में ऐसे लग रहे थे मानो दो अचल पर्वत एक दूसरे के सामने खड़े हों। इस भयंकर युद्ध को आकाश से हूरें (अप्सराएँ) देख रही थीं। लक्ष्मण ने इस युद्ध में अतिकाय को अस्त्ररहित कर दिया। उसके सभी अस्त्र-शस्त्र समाप्त हो गए, अतिकाय का सारथी भी युद्ध में मारा गया। तब राक्षस अतिकाय क्रोध में भर कर लक्ष्मण पर झपटा और लक्ष्मण ने उसको अपनी तलवार से दो भागों में विभाजित कर दिया। अतिकाय के मरते ही राक्षस सेना शीघ्र भाग गई।

अथ मकराक्ष युद्ध कथनम् :

अतिकाय के मरणोपरान्त मकराक्ष युद्ध के लिए

श्रीराम को युद्ध के लिए ललकारा, श्रीराम ने तब क्रोधित हो उसे तत्क्षण मार गिराया।

मकराक्ष के पश्चात् कुम्भ और निकुम्भ राक्षस आगे बढ़े और फिर युद्ध प्रारम्भ हो गया। वीरो ने कवच पहन रखे थे तथा हाथो मे पर्जे पहने हुए थे। सभी रणभूमि मे युद्ध करते-करते अचेत हो गए। तब श्रीराम की सेना ने लंका के दुर्ग के चारों ओर घेरा डाल दिया। राक्षसों की सारी सेना भाग गई।

कई शूरवीर वीरगति को प्राप्त हुए, उन वीरों का अप्सराएँ वरण कर रही थी।

अथ रावण युद्ध कथनम् :

जब श्री राम की वानर सेना ने लंका के दुर्ग को घेरे मे ले लिया तो सभी भयभीत हो इधर-उधर भागने लगे। वानरों ने मन्दोदरी को पकड़ लिया। इससे रावण क्रोध से भर गया और सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। फिर से भीषण युद्ध छिड़ गया। वीरो ने अपना-अपना शौर्य व रण-कौशल दिखाना प्रारम्भ कर दिया, विभिन्न प्रकार के आयुधो से युक्त वीरगण एक दूसरे को मारने काटने मे लगे थे।

बाणो से आकाश आच्छादित हो गया और रणभूमि लाशों से पटने लगी। श्रीराम के हाथो से मर सभी वीर ससार-रूपी सागर को पार करने लगे। ऐसे समय मे रावण लक्ष्मण की ओर दौड़ा और उस पर शक्ति से प्रहार किया। लक्ष्मण पृथ्वी पर गिर पड़े। राम को जब लक्ष्मण की मूर्छा का समाचार मिला तो उन्होंने भी क्रोध मे भर कर भयकर प्रहार करने प्रारम्भ कर दिए; और युद्ध मे विजय श्री को प्राप्त किया, तत्पश्चात् राम ने अपने भाई को आकर देखा। श्री राम को चिन्तित देख सभी चिन्तित हो उठे, तब हनुमान ने संजीवनी बूटी लाने के लिए प्रस्थान की आज्ञा मांगी और आकाश-मार्ग से उड़ चले। तब श्री राम को लक्ष्मण के जीवन की आशा हो गई।

हनुमान मार्ग की सभी बाधाओ को समाप्त कर बूटी के पास पहुचे और बूटी की पहचान न होने के कारण सारा पहाड़ उठा कर वापिस चले। उस विशल्य बूटी के प्रभाव से लक्ष्मण चेतन हो गए। इससे सभी को बहुत प्रसन्नता

लगी और लाशों से पटने लगी।

सुन्दर अप्सराएं आकाश में विभिन्न सुन्दर परिधान पहनकर वीरों का वरण करने को प्रस्तुत थी।

रावण तब क्रोध मे हुंकार भरते हुए आगे आया और सभी वीर एक-दूसरे पर इस प्रकार से टूट पड़े जैसे पक्षी पर बाज।

रावण अपने बीसों हाथो मे विभिन्न आयुध लिए रण को प्रस्तुत हुआ। रावन उस समय यमराज का प्रतिरूप लग रहा था।

रावण व श्री राम का युद्ध प्रारम्भ हुआ। श्री राम के भयकर तीरों की बाढ़ के आगे कोई भी वीर टिक न सका, सभी के सभी वीर-गति को प्राप्त हुए। सभी राक्षस उन भयकर प्रहारों से घबरा कर युद्धभूमि से खाइयो को फादते हुए भाग निकले। श्री राम के प्रहारों से जब रावण रथ-विहीन हो गया तब वह पैदल ही युद्ध के लिए आगे बढ़ा। भीषण-युद्ध के पश्चात् रावण राम के हाथों शिवलोक सिधारा। इस प्रकार श्रीराम ने युद्ध-रूपी स्वयंवर मे फिर से सीता का वरण किया।

अथ सीता मिलन कथनम्.

रावण की मृत्यु का समाचार जब उसके रनवास मे पहुंचा तो सभी रानियां रोती-बिलखती युद्धभूमि की ओर दौड़ी। जैसे ही इन रानियो ने श्री राम को देखा वे उनके चरणों पर गिर गईं। भगवान के सुन्दर रूप ने सभी को मोहित कर लिया।

श्री राम ने प्रसन्नतापूर्वक लका का राज्य विभीषण को दे दिया। सभी रानियां मन्दोदरी के कहने से श्री राम की शरण में आ गईं। राम ने युद्ध का कारण सभी को बताया और विभीषण के साथ हनुमान को सीता को वहा लाने के लिए भेजा।

श्री सीता प्रसन्नतापूर्वक हनुमान के साथ चली आईं, श्रीराम के समीप पहुंचने पर दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा। तब श्री सीता श्रीराम के चरणो में लोट गई, राम ने तब उन्हें अग्नि-प्रवेश की आज्ञा दी—सीता ने उसका पालन किया, राम ने अग्नि-प्रवेश के पश्चात् पवित्र भावों से पूरित सीता को अपना लिया। सभी लोग कार्य-सिद्धि के कारण प्रसन्न हुए और देवताओं ने आकाश से पुष्पवर्षा प्रारम्भ कर दी।

अथ अयोध्या आगमनम् :

श्री राम युद्ध मे विजयी हो पुष्पक विमान पर चढ अयोध्या को वापिस चले। उस समय विजय के गीतो से आकाश गुजारित हो उठा।

श्री राम के सीता सहित अयोध्या पहुचने पर मगलाचार होने लगे। सभी लोग राम को देखने को आकुल हो रहे थे, विजयी राम के दर्शनार्थ सभी लोग व्याकुल हो रहे थे और एक-दूसरे से आगमन के बारे मे पूछ रहे थे।

अथ माता-मिलनम् .

राम के आने की धुन सम्पूर्ण अयोध्या मे प्रसन्नता के बादल उमडने लगे। श्रीराम ने सभी माताओ के चरण छुए, माताओ ने उन्हे गले से लगा लिया। सभी आपस मे गले मिल कर रोने लगे, उन लोगो के रोने से इस प्रकार लग रहा था कि चौदह वर्षों के शोक को वे सभी उसी क्षण धो डालना चाहते हो।

श्रीराम व लक्ष्मण अपनी माताओ को युद्ध की बातें बताने लगे। फिर वे दोनो माता सुमित्रा से मिलने गए। सुमित्रा ने उस समय बहुत सा दान दिया। इसके बाद वे कैकेई से मिलने गए और उनसे कहा कि उन्ही के कारण वे इस प्रकार का कार्य करने मे समर्थ हुए हैं।

फिर शत्रुघ्न से मिले। भरत को जब यह समाचार मिला तो वह भागे-भागे आए और श्री राम के चरणों मे सिर रख दिया और श्री राम ने उन्हे अपने अक मे भर लिया।

तब ब्राह्मणो को बुला श्री राम का शास्त्रोचित राज्याभिषेक करवाया गया। इस अवसर पर सभी ओर से राजाओ को आमन्त्रित किया गया। राजाओ ने भिन्न-भिन्न प्रकार के उपहार श्रीराम को इस अवसर पर भेंट किए।

चहु ओर श्री राम के राज्य का डका बज गया। सभी राजाओ ने श्री राम को सम्राट् रूप मे स्वीकार कर लिया। विभिन्न लोग अपने मनानुरूप श्री राम को देखने लगे।

एक बार अगस्त्य, भृगु, अगिरा, वसिष्ठ, विश्वामित्र, वाल्मीकि आदि ऋषि श्री राम से मिलने आए। श्री राम ने सभी का उचित सत्कार कर आसन पर बैठाया ; ज्ञान का उपदेश उन सबने सम्राट् को दिया और अपने-अपने स्थान पर वापिस चले गए। तब एक ब्राह्मण आया जिसका पुत्र मर गया था, उसने उसे जीवित करने को कहा। तब श्रीराम ने पश्चिम दिशा मे एक विमान मगवाया

और उसका दु:ख दूर कर दिया। उत्तर दिशा में एक शूद्र नीचे सिर किए कुएं में लटक, तपस्या कर रहा था, इसे अनधिकार चेष्टा समझ राम ने उसका वध कर दिया। श्री राम के ऐसा करते ही उस ब्राह्मण का मृत बालक जीवित हो उठा।

श्री राम के प्रताप की दुदुंभी चारों दिशाओं में बजने लगी और सभी उनको दुखहारी समझते थे व सेवा करते थे।

श्रीराम ने भरत और लक्ष्मण को राजपद देने के पश्चात् शत्रुघ्न को मथुरा का राजा बना दिया, वहां लवण (लव) नामक दैत्य रहता था जो शिव का परम भक्त था। श्री राम ने शत्रुघ्न को एक अभिमन्त्रित बाण भेजा, उस बाण को दुर्गा का जाप करते हुए शत्रुघ्न ने लवण पर चलाया। उससे चुटिया कर लवण की मृत्यु हो गई और सभी देवता बहुत प्रसन्न हुए। शत्रुघ्न ने मथुरा को राक्षसों से रहित कर दिया। लवण की मृत्यु का समाचार तथा शत्रुघ्न की वीरता की ख्याति चारों ओर फैल गई।

अथ सीता को वनवास देना :

श्री सीता ने श्री राम से एक नन्दन वन के समान उपवन बनवाने को कहा, श्री राम ने तब एक शोभायुक्त उपवन बनवाया, उसमें एक भवन का निर्माण भी श्री राम ने करवाया और कुछ समय वहीं सुखपूर्वक निवास किया।

आनन्दपूर्वक वहां कुछ समय व्यतीत होने पर सीता जी ने गर्भ धारण किया, और एक दिन श्री राम से जगल मे घूमने की इच्छा प्रकट की और विदा मांगी। श्री राम ने उनकी ऐसी इच्छा देख कर लक्ष्मण के साथ उनको वन भेज दिया। श्री लक्ष्मण श्री सीता को वन में छोड़ कर (एकान्तवास के लिए) चले आए।

निर्जन वन मे सीता जी भयभीत हो मूर्छित हो गईं। भयभीत होने पर सीता जी चीखी और उस चीख को महर्षि वाल्मीकि ने सुना और सीता जी के पास पहुंच उन्हें अपने साथ ले आए। वाल्मीकि जी के आश्रम मे ही सीता जी के एक पुत्र हुआ मानो साक्षात् श्री राम ही दूसरी आकृति लिए हों। बालक महर्षि की छत्रछाया में बड़ा होने लगा। एक दिन सीता जी स्नान को गईं तो बालक को भी अपने साथ ले गईं। इससे पूर्व श्री सीता जब भी कहीं जाती थीं तो बालक को मुनि के पास छोड़ जाती थी। जब महर्षि ने उस दिन पालना देखा तो खाली पाया और उन्हें इस बात का शोक हुआ कि न जाने कौन-सा जानवर बच्चे को ले गया। उन्होंने तुरन्त कुशा हाथ में लेकर एक अन्य बालक की सृष्टि कर डाली

जो रूप रंग में उनके बालक के समान ही था। सीता जी जब स्नान करके आई तो एक और बालक को पाकर वे देख आश्चर्यचकित रह गई। बाद में सीता ने ऋषि की कृपा स्वरूप अपना लिया और दोनों बालकों का पालन करने लगी।

इधर अयोध्या में श्रीराम ने ब्राह्मणों को बुला एक यज्ञ का आयोजन किया। उसके लिए एक अश्व छोड़ा गया और शत्रुघ्न उसकी रक्षार्थ सेना सहित साथ चले। वह अश्व देश-देशान्तर घूमा, सभी जगह शत्रुघ्न का स्वागत किया गया और विभिन्न प्रकार के उपहार दिए गए। जब वह अश्व वाल्मीकि आश्रम में पहुंचा तो 'लव' ने उसे पकड़ लिया, शत्रुघ्न की सेना ने उसे अश्व छोड़ देने को या युद्ध करने को कहा। युद्ध की बात सुन सीता-पुत्र लव ललकारता हुआ सेना के मध्य में आ खड़ा हुआ और बात ही बात में कई वीरों को वीरगति प्रदान की। सभी महातेजस्वी योद्धा रण के रोष में भरे हुए युद्ध में जुट गए, पर जब लव तथा कुश ने तीखे तीरों की वर्षा की तो वे भाग निकले और राम के पास पहुंच कर विलाप करने लगे। तब श्री राम ने लक्ष्मण को युद्ध के लिए भेजा और उससे कह दिया की बालकों को मारें नहीं अपितु पकड़कर ले आए। लक्ष्मण तब सेना सजा कर वहां पहुंचे और भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया, चारों ओर मारो-मारो की आवाजें आने लगी, भीषण संग्राम हुआ, लव-कुश की तीरों की बौछार से घबरा कर बड़े बड़े योद्धाओं के पैर उखड़ गए। श्री लक्ष्मण ने उन दोनों से कहा कि हथियार छोड़ उनके पास आ जाए पर वे नहीं माने अपितु और भी उत्साह से लड़ने लगे। मात्र लक्ष्मण धैर्य धारण किए रहे बाकी सेना भाग गई, इतने में लव का एक तीर आकर लक्ष्मण को लगा और वह मूर्छित हो गए। जब श्री राम को इसका पता लगा तो वह बहुत व्याकुल हुए और भरत को उन बालकों को पकड़ लाने का आदेश दिया।

भरत ने तब उस स्थान पर जाकर उन मनमोहक बालकों को देखा। भरत ने लव से कहा कि वे दोनों उसके साथ श्री राम के पास चलें पर प्रत्युत्तर में उन दोनों ने बाण-वर्षा की। लव के बाण से राक्षसराज विभीषण भी घायल होकर गिर पड़े, विभीषण के गिरते ही सुग्रीव, हनुमान, नल, नील, अंगद आदि वानर सेनापति आगे आये पर वे भी उन दोनों का सामना न कर सके। यह देख भरत क्रोधित हो आगे आए पर वे भी सामना न कर सके और बाण की चोट से मूर्छित होकर गिर पड़े। जब श्री राम को यह समाचार मिला तो वे भी मूर्छित होकर गिर पड़े।

कुछ समय पश्चात् मूर्छा टूटने पर श्रीराम स्वयं सेना सजा कर युद्ध के लिए चले। उनके चलते ही आकाश में चुड़ैलें चीखने लगीं, श्रीराम क्रोध में भरे हुए लव-कुश से लड़ने चले तब शिव स्वयं ताडव नृत्य करने लगे, भूत-प्रेत बोलने लगे और प्रेत चिल्लाने लगे।

रणभूमि मे अब भीषण युद्ध चल पड़ा। जब कई बलवान लव-कुश की मार से घबरा कर भागने लगे तब श्रीराम ने ललकार कर उन बालको को पकड़ने को कहा पर वीरों की इतनी हिम्मत नही पड रही थी और वे भागने लगे।

तब श्री राम आगे आए और बालको से उनके माता-पिता के सम्बन्ध मे पूछा, लव-कुश ने मिथिलेश कुमारी सीता को अपनी माता बताया। श्री राम यह सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। कुछ बोले नही और हठपूर्वक युद्ध आरम्भ कर दिया, लव-कुश के बाणो की मार से श्री राम भी मूछित हो गए। जब सीता को इसका पता लगा तो वे शोक विह्वल हो गईं।

अथ सीता सब जिवाये कथनम् :

सीता शोक में बैठी थी और सोच रही थी कि राम के साथ ही चिता में जल जाऊँ और साथ ही वाल्मीकि भी शोक से सतप्त थे कि आकाशवाणी हुई कि 'सीता क्या तू भी बालक हो गई है।' इस पर सीता जी सचेत हुईं और अपने पतिव्रत से सभी को जीवित कर दिया। श्री राम ने तब सीता को धर्म-स्याना समझा और समझा-बुझाकर उसे तथा दोनो पुत्रों को साथ ले अयोध्या की ओर चले। श्री राम, लव व कुश तीनों ऐसे प्रतीत होते थे मानो तीन राम हों।

सीता और दुहूँ पुत्रन सहित अवध-प्रवेश कथनम् -

अवध पहुंचने पर तीनों माताओं (कौशल्या, कैकेई तथा सुमित्रा) ने अपने दोनों को गले लगा लिया। सीता जी सासों के चरणों पर गिर पड़ीं, उसी समय सब की दुःख की घड़ी समाप्त हो गई। श्री राम ने तब सभी यज्ञादि पूर्ण किए।

श्री राम ने जब सौ यज्ञ पूर्ण कर लिए तो इन्द्र सिंहासन छोड़ कर भाग गया। श्रीराम ने तब विभिन्न प्रकार के यज्ञ किए और दस हजार वर्षों तक अयोध्या का राज्य किया। इसके बाद उनका अन्त समय निकट आ गया।

सभी के सिर पर मृत्यु का डंका बजता है। आज तक कोई राजा या रंक उसे

जीत नही सका है ! काल से कोई भी नही बच सका है ?

श्री राम ने बहुत वर्षों तक राज्य किया, सभी वर्णों के व्यक्ति धर्मपूर्वक अपना ... कर्म ... और अराजकता का कही भी नाम नही था।

कुछ समय पश्चात् समय आने पर 'कौशल्या' की मृत्यु हो गई, श्रीराम ने उनके सब संस्कार किए। इसके बाद कैकेई और सुमित्रा भी परम-धाम को सिधारी।

एक दिन स्त्रियों के पूछने पर सीताजी ने रावण का चित्र दीवार पर बना दिया। जब श्रीराम ने उसे देखा तो मन मे विचार किया कि सीता अब तक रावण को नही भूली। सीता जी ने जब इस प्रकार से श्रीराम को विचार करते देखा तो बहुत दुखित हुई और उनका सन्देह दूर करने के लिए पृथ्वी से प्रार्थना की कि 'हे पृथ्वी, यदि मन, वाणी व कर्म द्वारा मैंने अपने हृदय मे श्री राम का ही चिन्तन किया हो तो मुझे रास्ता दो और अपने शरीर मे मिला लो।" सीता की पुकार सुन पृथ्वी फट गई और सीता जी उसमे समा गई। यह देख श्रीराम चकित रह गए और तभी से राज्य करने की आशा छोड दी।

श्री राम ने सोचा कि जगत एक धुएँ की तरह है और किसी काम का नही। जब सीता जी श्री राम के बिना नही रह सकती तो श्री राम भी उसके बिना कैसे रह सकते थे। उन्होने लक्ष्मण को बुला कर द्वार पर बैठने को कहा और किसी को अन्दर न आने देने का आदेश दिया। लक्ष्मण को ऐसी आज्ञा देकर स्वयं अन्त.पुर मे जा योगाभ्यास द्वारा नश्वर शरीर त्याग कर परम-धाम चले गए। जैसे अज ने इन्दुमति के लिए राज्य त्याग दिया था वैसे ही सीता के लिए श्री राम ने देह त्याग दी। जब श्री राम के परमधाम सिधारने की बात का पता जनता को चला तो चारो ओर शोक की लहर फैल गई। सभी हाहाकार करने लगे।

भरत को जब इस बात का पता चला तो वे भी योगाग्नि उत्पन्न कर ब्रह्मरन्ध्र फोड श्री राम से मिलने चल दिए। इसके बाद लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न ने भी अपने प्राण विसर्जित कर दिए, और श्री राम के चरणों मे जा पहुँचे।

लव और कुश ने सभी संस्कार किये, इसके बाद लव ने राजछत्र धारण किया। भरत, लक्ष्मण शत्रुघ्न की पत्नियां भी अपने अपने पतियो के साथ ...

चलाया। कुश को उत्तर और भरत-पुत्र को पूर्व, लक्ष्मण-पुत्र को दक्षिण तथा शत्रुघ्न के पुत्र को पश्चिम का राज्य भार दिया गया।

अन्त मे कवि कहते हैं कि श्री राम की कथा हर युग में अटल रहेगी। जो कोई राम कथा सुनता है उसे कोई दुःख नहीं सताता और यह ग्रन्थ विक्रम सं० १७५५ आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा को पूर्ण हुआ। गुरु गोविन्दसिंह जी कहते हैं कि ईश्वर की कृपा से यह कार्य पूर्ण हुआ है और खंगधारी ईश्वर यह स्वयं आपने ही बखान किया है, यह गोविन्द तो तुम्हारा दास है।

(ई) कथा के आधार

'गोविन्द रामायण' की रामकथा मे हमें 'वाल्मीकि-रामायण' तथा तुलसी कृत 'रामचरित मानस' की कथा के दर्शन तो होते ही हैं पर कई स्थलों पर कथा इनसे सामजस्य नही रखती। ऐसे स्थलों मे कही पर तो हमें गुरु गोविन्दसिंह जी की मौलिकता के दर्शन होते हैं और कई स्थलो पर अन्यथा राम कथाओं का आधार श्री गुरु जी ने लिया है।

ग्रन्थ के आरम्भ में राम-अवतार के मूल कारण को स्पष्ट किया गया है— असुरो के उपद्रवों से तंग आकर देवता लोग एकत्र होकर क्षीर-सागर मे जा भगवान से 'रघुनाथ अवतार' की प्रार्थना करते हैं। आदि कवि ने इसका वर्णन नही किया, तुलसीकृत मानस में पृथ्वी 'धेनु' रूप धारण कर देवताओं, गन्धर्वों आदि से सहायता की याचना करती है। यह कथा हमें महाभारत के 'रामोपाख्यान' मे मिलती है, उसी को कुछ बदल कर गुरु जी ने अपनाया है, उसके 'देवी-निवास' का वर्णन गुरु जी ने नही किया।

'गोविन्द रामायण' की 'श्रवण कुमार' की कथा तथा दशरथ के पुत्र-लाभ की आकाशवाणी की कथा का आधार 'ब्रह्मपुराण' है। इसी प्रकार से सीता तथा राम का पूर्वानुराग चित्रण किया गया है, ऐसा वर्णन हमे 'कल्कि पुराण', 'आनन्द रामायण', कृतिवास रामायण', 'कम्ब रामायण' आदि मे मिलता है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे सीता अपने महल की छत से राम को देखती है और उनमें परस्पर प्रेम जाग्रत होता है, कुछ ऐसा ही वर्णन हमें 'असमिया बालकांड' मे भी मिलता है।

सीता-स्वयंवर के प्रसग में परशुराम का आना धनुष टूटने के बाद ही दिखाया गया है पर लक्ष्मण का जो वाक्‌युद्ध तुलसी ने दिखाया है उसको भी

गुरु ने राम द्वारा ही करवाया है। इसमें साथ ही 'विष्णु धनुष' के चढ़ाने पर परशुराम के मन में जो शंका—

> 'तोर शरासन संकर को जिमि,
> मोहि बर्यो तिमि और बरैगे।"

कृत्तिवास रामायण मे दी गई है।

राम-राज्याभिषेक के उत्सव पर मथरा को ब्रह्मा द्वारा भेजी गई गन्धर्विणी बताया गया है जो सम्भवतः महाभारत के 'रामोपाख्यान' तथा आनन्द रामायण पर आधारित है। इसके बाद की कथा तुलसी के 'मानस' तथा आदि कवि वाल्मीकि कृत 'रामायण' पर ही अधिकांशतः आधारित है।

तेरहवें प्रकरण मे मेघनाद नागपाश मे राम-लक्ष्मण को बांध देता है तब सीता उन्हें नाग-मन्त्र का पाठ कर मुक्त करती है। यह वर्णन हमे विभिन्न राम-कथाओं मे विभिन्न रूप मे मिलता है'। कुछ एक कथाओ मे मात्र लक्ष्मण नाग-पाश मे बद्ध होते है, 'रामोपाख्यान' मे विभिषण स्वय 'प्रज्ञास्त्र' द्वारा राम-लक्ष्मण को पाशमुक्त करते है। इस प्रसग मे नाग-पाश प्रसग तो रामोपाख्यान, वाल्मीकि रामायण और 'कब रामायण' आदि से लिया गया है।

गोविन्द रामायण की कथा मे रावण की पराजय के पश्चात् जब राक्षस-पत्नियां युद्धभूमि मे राम को देखती हैं तो उनके सुन्दर रूप पर मोहित हो जाती है।

> "लखं रूप मोही। फिरि राम बोही॥"
> "एको पेख नारी। सरं काम मारी॥"

गुरु गोविन्दसिंह जी की रामकथा राम-राज्य के वर्णन पर ही समाप्त नही होती, इसमे सीता-त्याग तथा अश्वमेध के अवसर पर होने वाले लव-कुश के युद्धो तक का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसमें सीता अपनी इच्छा से पुन वनवास जाती है। वहा समय पर 'लव' उत्पन्न होता है और द्वितीय पुत्र 'कुश' की सृष्टि महर्षि वाल्मीकि द्वारा कुशा घास से होती है। यह कथा 'तिब्बती रामायण' और कथा सरित्सागर मे आती है। 'तिब्बती रामायण' तथा 'कथासरित्सागर' का प्रस्तुत वृत्तान्त थोड़े हेर-फेर के साथ हैं, गोविन्द रामायण मे हमे यह वृत्तान्त 'कथासरित्-सागर' के आधार पर मिलता है। 'कथासरित्सागर' मे यह कथा इस प्रकार से

है कि सीता अपने पुत्र 'लव' को स्नानादि करने जाते समय कुटी में ही छोड़ जाया करती थी। एक दिन वह उसे अपने साथ ले गईं, वाल्मीकि जब वापिस आए तो बालक को झोपड़ी मे न देख चिन्तित हो गए और सीता के दुख का स्मरण कर उन्होंने अपने तपोबल द्वारा 'कुश' घास से बालक की सृष्टि की। लौटने पर सीता ने उस बालक को भी पुत्रवत् ग्रहण किया। इसी कथा को 'गोविन्द रामायण' मे कहा गया है।

राम ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया, जब घोड़ा गया तो आगे चलकर उसे लव और कुश ने पकड़ लिया, राम की सेना तथा दोनो बालकों मे भीषण युद्ध हुआ। इसमे राम भी अन्त मे मूर्छित हो गए। जब सीता को इस बात का ज्ञान हुआ तो वह विलाप करने लगी। २०वें प्रकरण मे यह कथा कही गई है कि तब सीता ने हाथ मे जल लेकर सतीत्व-बल द्वारा सभी को जीवित कर दिया। इस वर्णन का आधार हम भवभूति कृत 'उत्तर रामचरित' को मान सकते हैं। इसके बाद 'जैमनीय अश्वमेध' मे भी इसके वर्णन मिलते हैं परन्तु वहा पर महर्षि वाल्मीकि सबको जीवित करते हैं। 'पद्मपुराण' के पाताल खंड मे भी ऐसा वर्णन मिलता है और उसमे सीता अपने सतीत्व की शपथ खाकर राम-सेना को पुनर्जीवित करती है। केशव कृत 'रामचन्द्रिका' में भी यही वर्णन कुछ परिवर्तनो के साथ आता है।

'गोविन्द रामायण' मे सीता का भूमि प्रवेश, रावण के चित्र बनाने पर, राम के हृदय मे सन्देह का कारण दिखाया गया है। रावण-चित्र की कथा हमें 'पउम चरिउ' में मिलती है। इसका प्राचीनतम उल्लेख जैन-साहित्य मे मिलता है। हरिभद्र सूरि के उपदेश पदो, भद्रेश्वर की 'कहावली' तथा हेमचन्द्र की 'जैन रामायण' मे हमे यह कथा कुछ थोडे से परिवर्तन के साथ मिलती है।[1] 'कृतिवास रामायण' मे भी 'रावण-चित्र' का वर्णन मिलता है, इसके साथ ही 'कश्मीरी रामायण', 'रामायण मसीही', नर्मद की 'रामायणसार' तथा 'आनन्द रामायण' मे भी इसी चित्र का उल्लेख मिलता है। किसी में कैकेई तो किसी में राम की बहिन के अनुरोध पर सीता रावण का चित्र दीवार पर बनाती हैं। 'गोविन्द रामायण' मे सीता एक दिन स्त्रियो के कहने पर रावण का चित्र दीवार पर बनाती है, इस पर राम को सीता के चरित्र पर सन्देह हुआ जिससे सीता

---

१. रामकथा, पृ० ६६७।

ह हुई और अपने सतीत्व की शपथ खाकर पृथ्वी मे समा गई।

गीतो मे सीता-निर्वासन का कारण सीता का रावण का चित्र बनाना है।

इस प्रकार से विभिन्न राम-कथाओ का आधार ले गुरु गोविन्दसिंह जी ने 'विन्द रामायण' की कथा को सजोया है।

---

१. रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ० १६५।
   धरती गाती है : देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ० १०५।

कथा-प्रारम्भ से फल की प्राप्ति तक की विभिन्न अवस्थाओ को पांच भागो मे विभाजित किया गया है :—

१. आरम्भ,
२. प्रयत्न,
३. प्राप्त्याशा,
४. नियताप्ति, तथा
५. फलागम।

कथा आदि से अन्त तक इन्ही उपर्युक्त पाच अवस्थाओ में से होती हुई फल को प्राप्त होती है। प्रारम्भ में कथा की आधार-शिला रखी जाती है। फिर प्रयत्न चलते है, कथा आगे बढने लगती है। फिर बीच में फल-प्राप्ति की पूर्ण आशा बन जाती है और कथा कुछ मोड लेती हुई उस उद्देश्य—लक्ष्य की ओर चल पडती है। यह नियताप्ति की अवस्था होती है और अन्त में फलागम की अवस्था मे उद्देश्य-पूर्ति हो जाती है।

'गोविन्द-रामायण' की कथा एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथा रामकथा को लेकर चली है।

"राम कथा जुग-जुग अटल सब कोई भाखत नेत।"

यही प्रसिद्ध कथा 'रामचरित मानस' तथा 'रामचन्द्रिका' में भी ली गई है परन्तु 'गोविन्द रामायण', 'रामचन्द्रिका' तथा 'रातचरित मानस' की कथावस्तु में अन्तर है। 'गोविन्द रामायण' में कथारम्भ में असुरो के उपद्रव से तग आकर देवता क्षीर-सागर मे विष्णु से अवतार लेने को कहते हैं। 'मानस' में यह कथा कुछ अन्तर से आती है। इसी प्रकार से 'गोविन्द रामायण' की कथा में हमें 'रघु' एव 'अज' के भी राज्यकाल का उल्लेख मिलता है तथा दशरथ को एक शिकारी राजा के रूप में दिखाया गया है, यही पर ग्रन्थकार ने 'श्रवण-कुमार' की कथा को लिया है जिसके 'मानस' के अयोध्या काण्ड में मात्र सकेत मिलते हैं।

'गोविन्द रामायण' की कथा का मुख्य उद्देश्य रामराज्य, शान्ति की स्थापना, अत्याचारियों का नाश है, जब कि 'मानस' मे मात्र दानव-राज रावण-वध के पश्चात् थोडा-सा राम-राज्य का वर्णन मात्र कर दिया है। तुलसीदास जी ने आरम्भ मे ही रामजन्म के हेतु को प्रकट करते हुए कार्य के सकेत दे दिए हैं, यद्यपि गुरु गोविन्दसिंह जी ने भी अत्याचारी रावण का वध मुख्य कार्य रखा

है पर रामराज्य का वर्णन करते हुए आगे लव-कुश तक की कथा का वर्णन आते 'रामचन्द्रिका' के समान लिया है। 'गोविन्द रामायण' में रामावतार में कथा की भूमिका बाँधी गई है। 'वनवास' इसी लक्ष्य-पूर्ति के प्रयत्न करता है। 'खर-दूषण' युद्ध में फल-प्राप्ति की आशा सन्निकट होती जाती है। इसके बाद कथा 'सीता-हरण' के पश्चात् एक निश्चित गति से, फल —रावणवध की ओर चलती है। 'रावण-युद्ध' प्रसंग में रावण मारा जाता है, इसके बाद कथा रामराज्य का वर्णन कर अन्त में लव-कुश के गद्दी पर बैठने तथा राम के सत्यलोक-वास तक चलती है। इस 'रामायण' का विषय-विभाजन अन्य राम-काव्यों के अनुसार 'काण्डों' में न होकर विभिन्न शीर्षकों में किया गया है जो इस प्रकार से हैं :-

१. रामावतार,
२. सीता स्वयंवर,
३. अवध प्रवेश,
४. वनवास,
५. वन प्रवेश,
६. खर-दूषण युद्ध,
७. सीता हरण,
८. सीता की खोज,
९. हनुमान सोध को पठैबो - लंका गमन,
१०. प्रहस्त युद्ध,
११. त्रिमुंड युद्ध,
१२ महोदर युद्ध,
१३. इन्द्रजीत युद्ध,
१४. अतिकाय युद्ध,
१५. मकराक्ष युद्ध,
१६. रावण युद्ध,
१७ सीता मिलन,
१८. अयोध्या आगमन,
१९. [illegible] मिलन,
२०. सीता [illegible],
२१. [illegible]

२२. सीता और कुश पुत्र सहित अवध प्रवेश।

इनमें से सबका विस्तार भी एक समान नहीं है।

'गोविन्द रामायण' की कथावस्तु बहुत कुछ 'रामचन्द्रिका' से मिलती है क्योंकि दोनों ही वीररस-प्रधान काव्य-ग्रन्थ हैं। 'गोविन्द रामायण' में राम-कथा के प्रसंग-प्रवाह की ओर विशेष ध्यान न देकर उनके दृश्य-विशेष को ही वर्णन का साधन बनाया गया है, युद्धों की सामग्रियों का विस्तृत वर्णन भी बहुत स्पष्ट किया गया है।

जिस प्रकार से तुलसीदास जी ने हिन्दू-धर्म तथा संस्कृति को विदेशी प्रभाव से रक्षा करने के लिए शास्त्र-धार्मिक साहित्य का तत्व निकालकर 'रामचरित-मानस' के रूप में हमें दिया, केशव ने प्राचीन साहित्य की समस्त विशिष्टताओं तथा हिन्दी भाषा में संस्कृत रीति-साहित्य का रूप रखने के लिए 'रामचन्द्रिका' का उपहार भारती को दिया, उसी प्रकार से गुरु गोविन्दसिंह जी ने भारतीय शौर्य-शक्ति व सौन्दर्य की रक्षा के लिए मर्यादित राम के चरित्र को 'गोविन्द-रामायण' के रूप में हमें दिया।

'गोविन्द रामायण' की कथावस्तु में यद्यपि प्रकृति-दर्शन, नाटकीयता, वर्णन, विस्तार सभी कुछ मिलता है पर सभी में हमें वीररस की प्रधानता दिखाई देती है। अन्य रस गौण स्थान ही प्राप्त कर सके हैं। कथानक की दृष्टि से डा० कामिल बुल्के ने अपनी रामकथा में इसकी निम्न विशेषताओं का वर्णन किया है' —

१. राम-सीता का [illegible]नुराग तथा अयोध्या में भी परशुराम का तेजभंग।

[illegible]कर राम तथा लक्ष्मण को नागपाश से मुक्त

[illegible] पुत्र-सृष्टि।

[illegible]त्व की शपथ खाकर समस्त

[illegible] अयोध्या के लिए प्रस्थान

[illegible] पर सन्देह तथा फलस्वरूप सीता

राष्ट

इस प्रकार से हम देखते हैं कि रामकथा में एक विशिष्ट अन्तर अन्य हिन्दी राम-काव्यों की कथावस्तुओं तथा गोविन्द रामायण की कथावस्तु में है।

(आ) पात्र

पात्रों के माध्यम से ही कवि अपनी विचारधारा को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। कथावस्तु विभिन्न पात्रों के सहारे ही लक्ष्य की ओर बढ़ती है। गुरु गोविन्दसिंह जी से पूर्व ही राम-कथा का इतना प्रचार हो चुका था कि उसके पात्रों से जन-साधारण परिचित थे। विभिन्न कवियों के योगदान के कारण राम-कथा इतनी विस्तृत हो चुकी थी कि उसके सभी अंशों को एक ही काव्य में एकत्रित करना असंभव हो गया था। कविगण स्वरुचि-अनुकूल प्रसगों की अपेक्षा करते थे अथवा विस्तार या सक्षेप में वर्णन करते थे, परन्तु उससे मूल कथा अथवा पात्रों की मूल विशेषताओं में कोई अन्तर नहीं आता था।[1]

गुरु गोविन्दसिंह जी ने 'गोविन्द रामायण' के पात्रों की विशेषताएं अनेक पूर्ववर्ती रामकाव्यों से चुनी है, ग्रन्थ के मूल कथानक को 'वाल्मीकि रामायण' से ही लिया है परन्तु पात्रों के चरित्र-चित्रण में वह अन्य काव्यों से भी प्रभावित हुए हैं।

राम :

'गोविन्द-रामायण' के राम सर्वज्ञ, अनादि और अनन्त हैं, जिन्होंने धरा को रावण आदि दानवों से मुक्त कराने के लिए इस लोक में मानव का रूप धारण किया है। गुरु गोविन्दसिंह जी ने राम के वीर रूप का ही अधिक वर्णन किया है पर इसके साथ-साथ एक कुशल राजनीतिज्ञ तथा लोक-नायक का रूप भी हमें देखने को मिलता है।

राम के वीर रूप के दर्शन हमें 'गोविन्द रामायण' में आद्योपान्त होते हैं। आठ वर्ष की अल्पायु में ही सभी शस्त्रों को चलाने में वह निपुण है और विश्वामित्र के साथ जाकर उनके 'पितृ-तोष' यज्ञ को राक्षसों के विघ्नों से दूर कर पूर्ण करवाते हैं। सीता स्वयंवर-प्रसंग में शिव-धनुष तोड़ने के पश्चात् परशुराम से संवाद करते समय हमें तुलसी के नहीं अपितु केशव के राम के दर्शन 'गोविन्द-

---

१. रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ० ३२० ।

रामायण' में होते हैं। रामचन्द्रिका' के समान ही इस ग्रन्थ में भी राम का उग्र है। परशुराम के क्रोधित स्वर को सुन राम भी उसी स्वर में उत्तर देते हैं :

"बोल कहे सु कहे द्विज जू जु फेरि कहै तु पै प्राण खवैहो।
बोलत ऐंठ कहा सठ जिऊं सब दांत तुराइ अबै घर जैहो ॥
धीर तबै लहिहैं तुम कउ जब भीर परे इक तीर चलैहो ।
बात संभार कहो मुख ते इन बातन को अबही फल पैहों ॥"

'रामचन्द्रिका' में भी गुरु-निन्दा सुनने पर राम का क्रोध उग्र रूप धारण कर लेता है और वह परशुराम को सचेत करते हुए कहते हैं :

"भगन कियो भव धनुष सात तुमको अब सालौं ।
नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं ॥
सकल लोक संहरहुं सेस सिर ते धर डारौं ।
सप्त सिंधु मिलि जाहिं होई सबही तम भारौं ॥
अति अमल ज्योति नारायणी कहि केशव बुझि जाय वर ।
भृगु नंद संभार कुठार मैं कियौं सरासन युक्त सर ॥"[1]

इसी प्रकार से विभिन्न युद्धों में हमें राम के वीर रूप का दर्शन होता है। वीर राम का सुन्दर रूप भी अतुलनीय दिखाया गया है। सौन्दर्य देवता 'काम' भी उनके सौन्दर्य के सामने तुच्छ है। सीता-स्वयंवर पर जब राम जनकपुरी पहुंचते हैं, उस समय सभी उनको अपनी-अपनी भावना के अनुरूप देखते हैं

"रिपं शत्रु जाने। सिध साधु माने।
शिशु बाल रूप। लख्यो भूप भूप ॥"

मानस में भी हमें राम के ऐसे ही रूप के दर्शन होते हैं

"जिन्ह के रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥"[2]

'गोविन्द रामायण' में राम की सुन्दरता भी अद्वितीय दिखाई गई है

"कज, कुरंग, कलानिधि, केहरि, कोकिल हेर हिए हहराई।
बाल लखें छबि खाट परें नहि, बाट चलें निरखें अधिकाई ॥"

राम की राजनीति की सफलता उनके मैत्री-सम्बन्धों के रूप में 'गोविन्द-

---

1. रामचन्द्रिका, ७.४२
2. रामचरितमानस, बालकांड, दोहा संख्या २४१।

रामायण' में दिखाई गई है। विभीषण को 'लंकेश' का सम्बोधन उनकी राजनीति की ही तो एक चाल है।

भरत जब उन्हें वापिस अयोध्या चलने को कहते हैं तो राम उसे समझा-बुझाकर वापिस भेज देते है। साथ ही यह भी निर्देश देते हैं कि उन्हें एक आवश्यक कार्य करना है और उसे अधूरा छोड़कर वापिस नहीं जा सकते :

"जाहु हमें किछु काज किवंहंहि।"

इन सब अलौकिकताओं के साथ हमें 'गोविन्द रामायण' में विरही राम के भी दर्शन होते हैं, 'सीता-हरण' के पश्चात् राम का विरही रूप—जिससे चहुँ ओर की प्रकृति भी उनके दुख से दुखित दिखाई देती है हमारे सामने आता है। पत्नी-प्रेमी का रूप भी हमें राम के चरित्र में मिलता है, एक पत्नीव्रत का पूर्ण निर्वाह राम ने किया।

राम लोकप्रिय है, इसका वर्णन दो स्थलों पर 'गोविन्द रामायण' में मिलता है। एक तो उनके वनगमन के समय और दूसरा वन से वापिस आने पर। जनता उत्सुक है, आतुर है, अपने प्रिय राम के दर्शनों के लिए :

"धाई लुगाई आवें। भौरो न बार पावें॥
आकिल खरे उडावें। म्हारे ढोलन कहां रे॥"

'गोविन्द रामायण' के राम तुलसी के राम की ही भांति—

"प्रभू है। अजू है॥ अजै है। अभै है॥
अजा है। अता है॥ अलै है। अजै है॥"

लक्ष्मण :

'गोविन्द रामायण' में लक्ष्मण का रूप प्रथमतः उस समय दिखाई देता है जब राम को बनवास की आज्ञा होती है। उस समय कैकेई तथा दशरथ के प्रति रोष प्रकट करते हुए लक्ष्मण आते हैं :

"भ्रात इतै इह भांति भई सुनि आइगे भ्रात शासन लीने।
कौन कुपूत भयो कुल में जिन रामहि त्रास बनें कहुँ दीने।
काम के बाण बिध्यों बस कामिनी क्रूर कुचाल महामति हीने।
टांड कुमांड के हाथ बिक्यों कपि नाचत नाच छरी जिमि चीने॥"

'गोविन्द रामायण' के लक्ष्मण 'रामचरित मानस' के लक्ष्मण की भांति राम के अनन्य सेवक हैं। उनका समस्त जीवन राम की ही सेवा में व्यतीत होता है।

वन मे राम के कष्टो का ध्यान रखना और प्रत्येक प्रकार से उनकी सेवा उनका प्रमुख उद्देश्य रहा।

प्रत्येक युद्ध मे राम के दाएं हाथ के रूप मे लक्ष्मण का सहयोग रहा है और अन्त समय मे भी राम जब समाधिस्थ होने लगते है तो उन्हें ही द्वार-रक्षक बनाते हैं।[1] और लक्ष्मण भी अपने भ्राता-स्वामी के न रहने पर—

"सकल जोग के किए विधाना।
लक्ष्मण तजे तैस ही प्राणा॥"

भरत तथा शत्रुघ्न

'गोविन्द रामायण' मे इन दोनो के दर्शन हमे बहुत कम स्थानो पर होते हैं। प्रथमत राम-विवाह के उपरान्त जब तीनों भाई अपने विवाहोपलक्ष मे जाने से पूर्व उनसे आशीर्वाद लेने जाते हैं, उसके बाद भरत के दर्शन हमें वन मे राम को वापिस ले आने के लिए होते हैं। ननिहाल से वापिस आने पर यहा भी भरत तुलसी कृत मानस के भरत की ही भाति कैकेई को कोसते हैं—

"लखयो कुपूत । कुलयों सुपूत ।
धिग मैया तोहिं। लाइ लाजा मोहिं॥"

राम के समझाने पर भरत उनकी पादुका लेकर वापिस आ जाते हैं और राम के नाम पर राज-कार्य चलाते हैं।

इसके पश्चात् भरत तथा शत्रुघ्न दोनों के दर्शन हमे राम के वन से वापिस आने पर होते हैं। राम ने शत्रुघ्न को मथुरा का राज्य दिया था, यह इतिहास-प्रसिद्ध है। गोविन्द रामायण मे भी इस का उल्लेख मिलता है। भरत राम के प्रिय हैं अतएव जब लव-कुश से युद्ध मे भरत घायल होते है तो राम क्रोधित हो उठते हैं। राम की मृत्यु के पश्चात् योग साधना द्वारा भरत तथा शत्रुघ्न दोनो ही सत्यलोक मे अग्रज भाई की सेवा को पहुच जाते हैं।

दशरथ.

दशरथ को 'गोविन्द रामायण' मे एक मृगया-प्रिय राजा के रूप मे चित्रित किया गया है। शिकार के धोखे मे ब्राह्मण की हत्या उससे हो जाती है। उसकी

---

१. सीता सहित अवध प्रवेश ६६६।

ग्लानि उन्हें रहती है। उनके पराक्रम का भी वर्णन मिलता है। राम उनको प्रिय हैं और जब कैकेई उनसे वर माँग राम को वन जाने को कहती है तो वह उसे बहुत ही बुरा-भला कहते हैं परन्तु वचन के सम्मुख विवश हैं। मानस में भी दशरथ को वचनों से बंधा दिखाया गया है। कुल की रीति के कारण वह अपने प्राण त्याग देते हैं :

"रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥"[1]

'गोविन्द रामायण' में जब कैकेई राम को वन भेजने को कहती है तो दशरथ उसे कहते हैं—

"गुदेव देव राम है। अभेद धर्म धाम है॥
अबुद्ध नारि तैं भर्न। अशुद्ध बात को भनं॥"

और जब कैकेई किसी भी तरह न मानी तो दशरथ—

"प्राण-पतन नृपवर सह्यों, धरम न छोड़ा जाय।
देन कहे जो वर हुते, तन-युत दिये चुकाय॥"

हनुमान:

'गोविन्द रामायण' मे इनका अधिक वर्णन नही आया है, मात्र सीता को खोजने जाते समय तथा युद्ध मे कही-कही इनका नाम आता है।

अंगद

वालि-पुत्र अंगद को राम ने सुग्रीव का युवराज बनाया है और लंका में रावण के पास अपना दूत बना कर भेजा। 'रामचरित मानस' के अंगद की ही भांति 'गोविन्द रामायण' मे भी अंगद रावण दरबार में बल दिखाने के लिए पैर रोपता है—

"कहि हारयो कपि कोटि देतपति इवक न मानी।
उठत पाव रपयो सभा मध्य सो अभिमानी॥
थके सकल असरार पांव किनहु न उचर्यों।
गिरे धरन मुरछाय विमन दानव दल चर्यों॥
ले चल्यो विभीषण भरत तिही बालि पुत्र घूसर बरण।
सट हटक जिकट तिह नास के चलि आयो जित राम रण॥"

---

[1] रामचरितमानस, अयोध्या कांड, दो० सं० २८।

रावण :

एक अत्याचारी घमंडी राजा के रूप में चित्रित है, उसकी वीरता की धूम चहुँ ओर मची है, उसके पास अपार सेना है और उसका उसे बहुत घमंड है।

'रामचरित मानस' की भांति 'गोविन्द रामायण' में भी सूर्पनखा के अपमान का बदला लेने वह आता है और छल द्वारा मारीचि की सहायता से सीता को हर ले जाता है।

अपने हठ के आगे रावण किसी की भी बात नहीं सुनता। अगद जब उसे समझाता है तो वह उल्टे उसे बताता है कि कितने बड़े-बड़े सूरमा उसके यहां कार्य करते हैं, राम-लक्ष्मण की क्या बिसात कि वे उसे युद्ध में पराजित कर सकें—

"अगनि पाक कहूं करै, पवन सुर द्वार बुहारे।
चंवर चन्द्रमा धरे सूर छत्रहि सिर ढारें॥
मद लच्छमी पियाव बेद मुख ब्रह्म उचारत।
बरुण बारि नित भरे और कुल देव जुहारत॥
निज कहत सुबल दानव प्रबल देत धनुद जछ मोहि कर।
वे युद्ध जीतने जाहिगे कहां कोई ते कौन नर॥"

रावण सचेत है, उसे शत्रु की प्रत्येक गतिविधि का पता उसका गुप्तचर विभाग देता रहता है। राम की सेना के बारे में जानते ही वह धूम्राक्ष तथा जांबमाली को सामना करने भेज देता है। सब कुछ होते हुए भी हठधर्मी के कारण किसी की सुनता नहीं। उसकी पत्नी मन्दोदरी जब उसे समझाती है तो उसे भी—

"बावरी रांड क्या भांड बातें बको रंक से राम का ओट राखा।"

युद्ध में रावण का चित्र वीररस का सिद्ध लगता है, बीस भुजाओं तथा दस शीशों से युद्ध का संचालन करता है। गुरु गोविन्दसिंह ने अपने समय के प्रचलित सभी शस्त्र उसके हाथों में दिखाए हैं। यहां तक कि बन्दूक भी वह चलाते हैं। वीरों को उत्साहित करते हुए युद्ध-भूमि में आता है और भयंकर युद्ध से सभी को एक बार भयभीत कर देता है। परन्तु बाद में विभीषण उसकी मृत्यु का भेद राम को बता देता है और रावण जिसका रथ टूट चुका था और फिर भी लड़ रहा था, मारा जाता है—

"दे दस बाण बिसाल हनो सिर बाए दिये तिहूंलोक बदे धं।"

लव-कुश :

'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार ही 'गोविन्द रामायण' मे भी राम-पुत्र लव-कुश का वर्णन आता है। जब राम सीता को वन भेज देते हैं तो वहा वाल्मीकि ऋषि के आश्रम मे लव उत्पन्न होता है। एक दिन सीता उस बालक को अपने साथ ले जाती है, वाल्मीकि आशकायुक्त हो जाते हैं। जब वहा पर बालक को नही देखते और सीता के दु.ख की सोच 'कुशा' से एक दूसरे बालक की सृष्टि कर देते है। सीता वापिस आने पर उसे भी स्वीकार कर लेती है।

लव और कुश दोनो ही की वीरता का वर्णन हमे 'गोविन्द रामायण' मे मिलता है, 'सीता-वनवास' नामक प्रकरण मे दोनों बालको की वीरता देखने को मिलती है। राजा राम के अश्वमेध-यज्ञ का घोड़ा चारों ओर से होता हुआ जब वाल्मीकि ऋषि के आश्रम के पास पहुचता है तो वहा उसे लव पकड़ लेता है, उस समय घोड़े की रक्षा मथुरा-नरेश शत्रुघ्न कर रहे थे और तब लव-शत्रुघ्न का युद्ध होता है। इसके बाद दोनों—लव-कुश का क्रमश. लक्ष्मण, भरत से युद्ध होता है। इनमे भी उन दोनो की वीरता का सामना कोई नही कर सकता। 'गोविन्द रामायण' के लव-कुश भरत की प्रत्येक बात का उत्तर तीर से देते हैं। भरत के पश्चात् राम स्वय घोड़े की रक्षा के लिए पहुचे, लव-कुश ने उनका भी स्वागत किया, 'सीता-वनवास' प्रसंग मे युद्ध-भूमि से राम को दोनो बालक ललकारते हैं—

"सेना सकल जुझाई कै, कत बैठे छप जाय।
अब हम सौं तुमहूं लरो, सुनि-सुनि कौशलराय॥"

'गोविन्द रामायण' के समान ही 'रामचन्द्रिका' मे भी लव-कुश द्वारा राम-सेना का पराभव दिखाया गया है।

इस युद्ध के पश्चात् हमे लव-कुश ग्रन्थ के अन्त में मिलते हैं जब रामादि का सत्यलोक-वास हो जाता है तो अवध-प्रवेश प्रसंग मे लव राज-छत्र धारण करते हैं और चारों दिशाओं का राज्य इस प्रकार बांट देते हैं—

उत्तर देस आप कुश लीआ।
मालव-पुत्र कहूं पूरब दीआ॥
दच्छिन दिस भरत के बाला।
पच्छम शत्रुघन-सुत बैठाला॥

स्व-कुल को गुरु गोविन्दसिंह जी ने दो वीर बालकों के रूप में की है।

'गोविन्द रामायण' के पुरुष पात्रों में उपर्युक्त विवेच्य पात्रों के अतिरिक्त कई पात्र आते हैं परन्तु उनके वर्णन को अधिक विस्तार नहीं दिया गया। अब हम प्रमुख नारी पात्रों का चित्रण देंगे—

सीता :

'गोविन्द रामायण' में भी 'रामचरितमानस' तथा 'रामचन्द्रिका' की ही भांति सीता नायिका-पद पर प्रतिष्ठित है। सीता के प्रथम दर्शन गोविन्द रामायण में 'सीता-स्वयम्वर' नामक प्रसंग में होते हैं जब छत पर से वह राम को जनकपुरी में घूमते देखती हैं। 'मानस' में पुष्पवाटिका में सर्वप्रथम सीता के दर्शन होते हैं।

शिव-धनुष टूटने पर सीता सौन्दर्य की देवी राम के गले में वरमाला डाल देती है। इसके पश्चात् सीता के दर्शन हमें 'अवध-प्रवेश' में एक पति-परायणा स्त्री के रूप में होते हैं, जब राम के समझाने पर भी वन के कष्टों को सहने के लिए तैयार है पर पति-सेवा से विमुख नहीं होती—

"मैं न तजौं पियसग, कैसो दुःख जिय पै परै।
तनिक न मोरउं अंग, अंग ते अनंग किन ॥"

तुलसी की सीता अनन्य पति-परायणा स्त्री हैं, पति की अनुपस्थिति में वे सब-कुछ निस्सार समझती है। पति के साथ उन्हें जंगल में भी मंगल दिखाई देता है। उनके अनुसार पति के बिना स्त्री के लिए कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं—

"जिय बिनु देह नदी बिनु वारी।
तैसहइ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥"[1]

'रामचन्द्रिका' में हम सीता को राम की यथार्थ जीवन-संगिनी के रूप में देखते हैं।[2]

'गोविन्द रामायण' में सीता के चरित्र को दो स्थानों पर पूर्णरूप से स्पष्ट साध्वी चित्रित किया गया है। उसकी पतिभक्ति-निष्ठा वहाँ साकार हो उठती है

[1] अयोध्या कांड, दो० स० ६५।
[2] शिष्ट अध्ययन, पृष्ठ ३३०।

जब 'इन्द्रजीत-युद्ध' प्रसंग में मेघनाद 'नाग-पाश' में राम-लक्ष्मण को बांध देता है, जब सीता को यह दृश्य दिखाया जाता है तो पति को इस प्रकार असहाय अवस्था में देखकर क्रुद्ध हो उठती है और नाग-मन्त्र पढ़ कर उन्हें नागपाश से मुक्त कर देती है—

"सिय निरख नाथ मनमंहि रिसान ।
दस अउर चार विद्या-निधान ॥
पढ नाग मन्त्र संघरी पाश ।
अति भ्रात जिबइ चित भा हुलास ॥"

इसी प्रकार से 'सीता वनवास' प्रसंग में जब लव-कुश सारी राम-सेना को रामसहित सज्ञा-हीन कर देते है तो सीता भी वहां अपनी पति-परायणता की शपथ द्वारा सबको जीवित कर देती हैं। 'अथ सीता ने सब जिवाये' प्रसंग में—

"जो मन बच करजन सहित, राम बिना नहिं और ।
तउ ए राम सहित जिएं कह्यो सिया तिह ठोर ॥"

'रामचन्द्रिका' के समान इस ग्रंथ में भी लव-कुश द्वारा सेना सहित राम पराजय व महार सुन सीता वैधव्य की कल्पना कर व्यथित हो जाती है। 'सीता वनवास' प्रसंग में —

"देखि सिया पति-पुत्र रो दीना ।
कह्यो पूत विधवा मुहि कीना ॥"

'रामचन्द्रिका' में तो उनकी घनीभूत पीड़ा शाप बनकर मुखर हो उठती है :—

"माता सब काको करो विधवा एकहिं बार ।
मोसी और न पापिनी आए बंश कुठार ॥"

'गोविन्द रामायण' की पतिपरायणा सीता के लिए जब राम के मन में सन्देह होता है तो वह सहन नहीं कर सकती और ग्रंथ के अन्तिम प्रसंग 'अवध-प्रवेश' में धरती मां से प्रार्थना करती है :—

"जउ मेरे मन बच करम, हृदय बसत रघुनाथ ।
पृथ्वी पैंड मुहि दीजिए लीजै मोहि मिलाय ॥"

---

१. रामचन्द्रिका, ३३।१।

कौशल्या :

राम की जननी कौशल्या कुहडाम के राजा की कन्या है जिसने स्वयंवर में अवध नरेश दशरथ को पति रूप में चुना। इसके बाद इनके दर्शन अवध-प्रवेश में राम के वन जाने के पूर्व आज्ञा मांगने समय होते हैं और 'बनवास' प्रसंग में राम वनगमन के पश्चात् आपका करुण-विलाप हृदय को विह्वल कर देने वाला है। उनके मन की दशा विछोह के कारण विक्षिप्त की सी अवस्था लगती है :–

"कहो काज कौन की हमारे शोण ग्रात हो।"

कैकेई :

'रामचरितमानस' की कठोरा कैकेई का यहाँ भी कठोरा के रूप में ही चित्रण किया गया है।

मन्थरा के कहने पर वह तुरन्त राजा दशरथ के पास पहुँच वरों की माँग करती है। राजा के बहुत समझाने पर भी नहीं मानती, अपने हठ—राम को बनवास तथा भरत को राज्य पर डटी रहती है। राजा के बुरा-भला कहने पर भी 'अवध-प्रवेश' प्रसंग में वह अपनी बात पर अड़ी रहती है और राजा से कहती है —

"नरेश मानो। कह्यो पछानो॥ वरी सु देहू। बरं दु मोहू॥
चितार लीजे। कह्यो सु दीजे॥ न धर्म हारो। न भ्रम्म हारो॥"

गुरु गोविन्दसिंह जी ने भी अन्य रामकथाओं की भांति अन्त में कैकेई के इस कलंक को दूर कर दिया है कि राम को उसने बनवास भेजा था। 'माता-मिलन' प्रसंग में राम कैकेई से मिलने पर कहते हैं —

"कहा दोष तेरो। लिखा लेख मेरो।
हुती होनु होई। कहै कौन कोई॥"

मन्थरा

कैकेई की मुंहलगी दासी जिसने राम-वनवास की आग लगाई थी। अन्त में उसे —

"नाम मथरा मेह सकल केरी कैकेई केरि॥"

---

१. रामचरित मानस, अयोध्या काण्ड, दो० सं० ११।

कहा गया है, परन्तु गोविन्द रामायण में उसे 'गन्धर्विणी' कहा गया है। 'अवध प्रवेश' प्रसग मे जब राम के राज्याभिषेक की तैयारी होती है तब:—

"मन्थरा, गन्धर्विणी ब्रह्मा पठी तिहकाल।
बाज-साज सने चढ़ी सब शुभ्र धवल उजाल॥"

यहा पर मन्थरा का रूप पुराणों के अनुसार लिया गया है।

मन्दोदरी :

सीता के समान ही मन्दोदरी भी पति की सच्ची पथप्रदर्शिका है परन्तु इसे सीता से अधिक कठोर परीक्षा का सामना करना पड़ता है क्योंकि सीता को अपने पतिव्रत के साथ राम के एक पत्नी-व्रत का भी अभिमान है और इधर रावण अनेक स्त्रियों का स्वामी है।

गोविन्द-रामायण मे हमें मन्दोदरी के दर्शन 'लंका-गमन' प्रसग मे ही होते हैं जहा अंगद को जाने के बाद वह रावण को नीति-शिक्षा देती है, उसकी वीरता के बारे में कहती है पर रावण उसकी बात नहीं मानता।

गुरु गोविन्दसिंह जी ने मन्दोदरी का चित्रण केशव की मन्दोदरी जैसा ही किया है। 'लंका-गमन' प्रसग मे मन्दोदरी रावण से सीता को वापिस कर देने को कहती है और साथ ही भावी युद्ध के प्रति रावण को सचेत कर उससे नगर के इन्तजाम करने की बात भी कहती है।

पंचम प्रकरण

गोविन्द रामायरा

(अ) कयोपकथन

पात्रो के शील एव चरित्र की विज्ञप्ति के लिए कयोपकथन से बढ़ कर कोई अन्य साधन नही है। कथावस्तु का विकास तथा पात्रो के चरित्र का निदर्शन कथोपकथन द्वारा ही सम्पादित होता है। विद्वानों ने कथोपकथन की श्रेष्ठता के लिए उसमे निम्न पांच विशेषताए बताई है —

(१) कथोपकथन मे स्वाभाविकता होनी चाहिए तथा पात्रो की प्रकृति के अनुकूल होना चाहिए।

(२) भाषा सरल होनी चाहिए जिसमे सामान्य-जन भली प्रकार उस बात को समझ सके। कथोपकथनो मे जटिल एव दार्शनिक विषयो का विवेचन नही होना चाहिए।

(३) कथोपकथन की सघटना कथावस्तु के विस्तार एव चरित्र-विकास के अनुपात से ही होनी चाहिए।

(४) कथोपकथन [illegible] लम्बा नही होना चाहिए।

(५) [illegible] इस प्रकार की होनी चाहिए कि वे विभिन्न पात्रो [illegible] न लगे, उनमे समान स्तरीय उतर-प्रत्युत्तर [illegible] कसावट का आभास मिलना चाहिए।

[illegible] न अधिक मिलते है और कथोपकथनो को [illegible] दी, फिर भी जितने ऐसे प्रसग हमे ग्रन्थ [illegible] त्तित्व के अनुकूल सवाद दिखाई देते हैं। [illegible] सवाद, 'अवध-प्रवेश' प्रकरण मे

दशरथ तथा कैकेई-संवाद, इसी प्रसंग में राम-सीता संवाद, 'वनवास' प्र
राम-भरत संवाद, 'लंका-गमन' प्रकरण में अंगद-रावण तथा रावण-म
संवाद, इनके अतिरिक्त विभिन्न स्थलों पर कुछ थोड़े-बहुत और कथोप
के उदाहरण भी मिलते हैं।

'सीता-स्वयंवर' प्रसंग में जब परशुराम आते हैं तो राम और उनमें
उत्तर-प्रत्युत्तर हुआ है वह वीर-रस तथा ओज से पूर्ण है। एक को तो गुरु
धनुष टूटने का क्रोध है तो दूसरे को आनन्द में विघ्न डालने वाले पर क्रोध है
परशुराम के—

"भूमि, अकास, पताल दुरैवे को राम कहौ कहं ठाम लहैगे।"

कहने पर राम कहते हैं :—

"श्री रघुनाथ कमान लै हाथ, कह्यो रिस के किह पं शर ताने।"

ब्राह्मण पर हाथ उठाना उन्हें अच्छा नही लगता। इस पर परशुराम की
क्रोधाग्नि में घृत की आहुति पड़ जाती है—

"जेतक बैन कहे सुकहे जु पं फेरि कहे तु पं जीत न जैहो।"

इसी प्रकार से प्रस्तुत प्रसंग में संवाद देखने को मिलते है।

इसके पश्चात् जब कैकेई अपने दो वर—राम को वनवास तथा भरत को
राज्य मांगती है तो उस समय उसके तथा दशरथ के संवाद भी दर्शनीय है। राम,
दशरथ के प्रिय पुत्र हैं। दशरथ कैकेई को भला-बुरा कहते है, एक प्रलापी की
जैसी दशा होती है, जैसे उससे कोई बात स्पष्ट नही कही जाती और उसे रुक-
रुककर वह कहता है वैसे ही दशरथ भी—

"कलंक रूपा। कुवृत कूपा॥ निलज्ज नैनी। कुवाक बैनी।" आदि

राम वन जाने को प्रस्तुत हैं। सीता भी साथ जाने का हठ करती हैं। राम
उसे बहुत प्रकार से समझाते है परन्तु सीता का उत्तर—

"मै न तजौं पिय संग, कैसो दुःख जिय पै परै।
तनिक न मोरउ अंग, अंग से होइ अनंग किन॥"

को चुप करा देता है।

'वनवास' प्रसंग में राम-भरत संवाद भी दर्शनीय है यद्यपि बहुत कम है।
राम को वापिस ले जाना चाहते हैं परन्तु राम उन्हें समझा कर वापिस
देते हैं, इसी प्रसंग में भरत को समझाते हुए वे कहते

कुश : राज राज तुम्हें कहा मम मंत्र सो अब काम।
बूझि लीजो ईश लोगन जाति के संग्राम॥"[1]

इसी प्रकार का अन्य उदाहरण हमें अगद-लव सवाद मे मिलता है 'रामचन्द्रिका' के समस्त सवादो की भाषा प्रसाद गुण से युक्त है।[2] प्रसाद-गुण से युक्त रचना मे सरल और आसानी से समझे जा सकने वाले शब्द और वाक्य होते है।[3]

'गोविन्द रामायण' के सवादो मे 'मानस' तथा 'रामचन्द्रिका' की सी बात नही है। इसका एक मात्र कारण लेखक-व्यक्तित्व है। गुरु गोविन्दसिंह जी जहाँ वीरता की मूर्ति थे तो वहा गोस्वामी तुलसी भक्ति तथा आचार्य केशव साहित्यिकता की। इसी कारण से सवादो की सघटना मे अन्तर है। इसके साथ ही तीनो का 'उद्देश्य' भी भिन्न था और अपने-अपने उद्देश्य व लक्ष्य के अनुकूल ही तीनो ने अपनी रचनाओ मे सवादो को प्रयुक्त किया है।

(ब) देशकाल

कवि अपने देश तथा समय व उस युग की परिस्थितियो से प्रभावित होता है। उसकी रचना मे अनायास ही उसके युग की अनेक बातो की झलक हमे देखने को मिल जाती है। गुरु गोविन्दसिंह जी ने जिस 'रामकथा' का वर्णन 'गोविन्द रामायण' मे किया है वह त्रेता-युग की है परन्तु कवि ने स्वानुभवो तथा रुचि के अनुकूल समकालीन अनेक बातो का समावेश त्रेता-युग के उस कथानक मे भी कर दिया है। इसमे यद्यपि उसमे कालदोष आ गया है, पर कवि की मौज इसकी परवाह कब करती है।

गुरु गोविन्दसिंह जी की दृष्टि मे 'अश्व' का महत्त्व बहुत अधिक था, इसके सकेत हमे कई स्थानो पर मिलते हैं। अश्व-दान के महत्त्व को आपने गौ-दान के समान ही माना है। दशरथ के यहा पुत्र उत्पन्न होने हैं तो वह सुसज्जित घोडे व हाथी दान करते हैं —

"किंकिणि के जाल भूपित बाजि औ गजराज।
साजि-साजि दिये द्विजेशन आज कौशलराज॥"

---

१. रामचन्द्रिका : आचार्य केशव, १८-३, ४।
२. रामचन्द्रिका का विशिष्ट ... ..र, पृ० ४१८।
३. काव्य-प्रदीप, पृ० ६७

चित्रकूट की सभा मे हमे उपर्युक्त सभी विशेपताओ से युक्त सवाद मि गोवि
है। मानस मे गोस्वामी जी ने संवादो की संघटना अत्यन्त सुन्दर रू
है। आपके सवादों की भापा लोक-रजक, सवाद-पात्र के स्वभाव व प्र
अनुरूप, उनमें हमें समानस्तरीय उत्तर-प्रत्युत्तर भी देखने को मिलता है।
कांड मे रावण-अगद सवाद देखिए :—

"कह दस कंठ कवन तैं बंदर,
मैं रघुवीर दूत दस कंधर।"[1]

इसी प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण हमे मानस मे मिलते है।

आचार्य केशव कृत रामचन्द्रिका के सवाद भी दर्शनीय हैं। रामचन्द्रिका
के प्रायः सभी सवादो मे अभिधा-मूलक व्यजना का प्रयोग हमे मिलता है।
इसके साथ ही सवाद प्राय 'गूढोत्तर' लिए है।[2] केशव के सवादो मे व्यग की
सुन्दरता देखने को मिलती है।—

"सागर कैसे तरयो ? जैसे गोपद,
काज कहा ? सिय चोरहि देखो।
कैसे बधायों ? जु सुन्दरी तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो॥"[3]

उपर्युक्त हनुमान-रावण सवाद मे उत्तर-प्रत्युत्तर दर्शनीय है। इसी प्रकार
से रावण-अगद सवाद मे भी :—

"कौन के सुत ? बालि के, वह कौन बालि न जानिये ?
कांख चांपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये।"[4]

'रामचन्द्रिका' के सवादो मे हमे सुगम भापा के दर्शन भी होते हैं। राम
तथा लव-कुश के सवाद इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं :—

राम :
"सीता समान मुखचन्द्र विलोकि राम।
बूझयो कहाँ बसत हौ तुम कौन ग्राम।
माता-पिता कवन कौनेहि कर्म कीन।
विद्या विनोद शिष कौनेहि अग्र लीन ?"

---

1. मानस, लंकाकांड, छन्द संख्या १०।
2. रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृष्ठ, ११८।
3. रामचन्द्रिका, आचार्य केशव, १४।१।
4. वही, १६।३।

कुश : राज राज तुम्हें कहा मम बंध सो अब काम।
छूटि लीजो ईश लोगन जाति के संग्राम॥"[1]

इसी प्रकार का अन्य उदाहरण हमें अंगद-रावण संवाद में मिलता 'रामचन्द्रिका' के समस्त संवादों की भाषा प्रसाद गुण से युक्त है।[2] प्रसाद-से युक्त रचना में सरल और आसानी से समझ आ जाने वाले शब्द और वाक्य होते हैं।[3]

'गोविन्द रामायण' के संवादों में 'मानस' तथा 'रामचन्द्रिका' की सी बात नहीं है। इसका एक मात्र कारण लेखक-व्यक्तित्व है। गुरु गोविन्दसिंह जी जहाँ वीरता की मूर्ति थे तो वहाँ गोस्वामी तुलसी भक्ति तथा आचार्य केशव साहित्यिकता की। इसी कारण से संवादों की संघटना में अन्तर है। इसके साथ ही तीनों का 'उद्देश्य' भी भिन्न था और अपने-अपने उद्देश्य व लक्ष्य के अनुकूल ही तीनों ने अपनी रचनाओं में संवादों को प्रयुक्त किया है।

(ब) देशकाल

कवि अपने देश तथा समय व उस युग की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। उसकी रचना में अनायास ही उसके युग की अनेक बातों की झलक हमें देखने को मिल जाती है। गुरु गोविन्दसिंह जी ने जिस 'रामकथा' का वर्णन 'गोविन्द रामायण' में किया है वह त्रेता-युग की है परन्तु कवि ने स्वानुभवों तथा रुचि के अनुकूल समकालीन अनेक बातों का समावेश त्रेता-युग के उस कथानक में भी कर दिया है। इससे यद्यपि उसमें कालदोष आ गया है, पर कवि की मौज इसकी परवाह कब करती है।

गुरु गोविन्दसिंह जी की दृष्टि में 'अश्व' का महत्त्व बहुत अधिक था, इसके संकेत हमें कई स्थानों पर मिलते हैं। अश्व-दान के महत्त्व को आपने गौ-दान के समान ही माना है। दशरथ के यहां पुत्र उत्पन्न होते हैं तो वह सुसज्जित घोड़े व हाथी दान करते हैं :—

"किंकिणि के जाल भूषित बाजि औ गजराज।
साजि-साजि दिये द्विजेशन आज कौशलराज॥"

---

१. रामचन्द्रिका : आचार्य केशव, ३८-३, ४।
२. रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ० ४१८।
३. काव्य-प्रदीप, पृ० ६७।

इसी प्रकार से घोड़े का वर्णन करते समय औचित्य-अनौचित्य का ध्य
भी गुरु महाराज को नही रहता। 'अवध-प्रवेश' प्रसंग मे जब भरत-लक्ष्मण त
शत्रुघ्न की बरात का वर्णन करते समय घोडो की उपमा चतुर नारियों
दे दी है :—

"जागरा के नैन हैं कि चातुरा के बैन हैं।"

पजाब प्रदेश मे एक प्रथा है कि जब पुत्र ब्याह कर घर आता है तो उसकी
माता जल, वर-वधू पर से वार कर पीती है। गुरु गोविन्दसिंह ने इसे अयोध्या
मे भी दिखा दिया है। 'अवध-प्रवेश' प्रसग मे राजकुमारो के विवाह कर आने
पर कौशल्या, कैकेई तथा सुमित्रा उन पर से जल वार कर पीती हैं :—

"मातन वार कियो जल पानं।"

गुरु जी का मन युद्ध के प्रसगो मे अधिक रमा है, ऐसे दृश्यों के चित्रण मे
कवि की सूक्ष्म दृष्टि का परिचय हमे मिलता है और ऐसे दृश्यो की अतिशयोक्ति
अधिक खटकती नही है। यद्यपि ऐसे वर्णनो में गुरु जी ने बहुधा कवि-सम्प्रदाय
का ही अनुसरण किया है पर कही-कही आवेश में आ परम्परा विरुद्ध भी हो
जाते हैं। अतएव ऐसे स्थलो मे हमे काल-दोष विषयक त्रुटि का भी आभास
होने लगता है।[1]

'रावण युद्ध' प्रकरण मे जब रावण युद्ध-भूमि मे आता है तो उसके अस्त्र-
शस्त्र का वर्णन करते हुए गुरु जी ने उसके हाथ मे हथनाल (बन्दूक) का भी
वर्णन किया है :—

"पंद्रएं गलोल पाश अमोल परस अडोल हथिनालं।"

यद्यपि हथनाल का प्रयोग त्रेता मे नही होता था, गुरु जी के समय मे
...का प्रयोग किया जाता था और अन्य शस्त्रो के साथ आपने इसका वर्णन भी
...दिया है। यह सब देशकाल के कारण ही है।

...राम के समय मे छुआछूत की अधिकता न थी पर गुरु गोविन्दसिंह जी
...मय मे यह बहुत बढ़ चुकी थी। इसके सकेत हमे 'माता-मिलन' खड मे
...दे देते है जहा शूद्र को तपस्या करने का अधिकार नहीं है :—

"हुतो एक शूद्रं दिशा उत्र मद्धं,
भुले कूप अद्धं परयो ओध मुद्धं।"

---

[1] ...ल्मीय मार्द व की सांस्कृतिक देन : ...धुराम, पृष्ठ १६१।

महा उग्र तेजा तपस्यात उग्रं ;
हन्यो ताहि रामं असं आप हस्तं ॥"

सम्भवतः इसी कारण से 'गोविन्द-रामायण' में निषाद-राज तथा शबरी उल्लेख नहीं किया गया। यद्यपि गुरु जी स्वयं इस छुआ-छूत के भेद को नहीं मानते थे, 'खालसा' पन्थ में एक पंगत में बैठ कर खाने का आदेश आप ने दिया था परन्तु तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव गुरु जी पर भी पड़ा है। रण-वाद्यों का वर्णन भी 'गोविन्द-रामायण' में कवि के समकालीन वाद्यों का वर्णन है। गुरु जी ने एक 'नगाड़ा' बनवाया था जो अपने प्रत्येक युद्ध में वे बजवाते थे, यहां भी प्रत्येक युद्ध में उसका बजना दिखाया गया है। लव और कुश के अभिमान युक्त उत्तर गुरु गोविन्दसिंह जी के पुत्र अजीतसिंह और जुझारसिंह के अभिमान युक्त उत्तर लगते हैं।

'सीता-वनवास' वर्णन में लव-कुश, राम-सेना को हरा विपक्षी दल के आभूषण आदि भी उतार लेते हैं :—

"काट भुजन के कवच सवारे।
भूषण अंग अनूप उतारे॥"

यह भी देशकाल के प्रभाव को बताते हैं। इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी हमें मिल जाते हैं जो गुरु गोविन्दसिंह जी के समय के ही अधिक लगते हैं। न कि त्रेता के।

आचार्य केशव कृत रामचन्द्रिका में भी हमें इस प्रकार के कई उदाहरण देखने को मिलते हैं जो त्रेता-युगीन नहीं हैं। वन का वर्णन करते समय वहां लवंग तथा पुंगीफल आदि का वर्णन कवि ने किया है जब कि विहार के जंगलों में ऐसी चीजें नहीं पाई जाती। इसी प्रकार से राम भरद्वाज ऋषि से सनाढ्यों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं, परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि त्रेता युग में ब्राह्मणों के उपभेद हो चुके थे। इसी प्रकार से पाण्डवों के वर्णन के साथ राम का वर्णन असंगत है पर केशव ने 'राम दण्डक वन' में ऐसा किया है। 'राजा-राम' वर्णन के अन्तर्गत राम के चौगान खेलने का वर्णन किया गया है —

"एक बार अति रूप निधान। खेलन को निकरे चौगान।"[1]

---

१. रामचन्द्रिका, ३४।१।

परन्तु 'चोलना' शब्द फारसी भाषा का है और राम के समय में इस वेश का प्रचार था। इसी प्रकार 'राम-सागर' में भूत-पीड़ा का उल्लेख मिलता है जब कि इसके संकेत सर्वप्रथम हमें मध्यकाल में मिलते हैं। इसी प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण हमें रामचन्द्रिका में मिलते हैं।[1]

गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' में भी हमें तुलसी के समय के युग चित्र देखने को मिल जाते हैं। तुलसी राम-भक्त थे। अतः उनके सभी पात्र राम की भक्ति से पूर्ण हैं। तुलसीदास जी ब्राह्मण थे इसलिए ब्राह्मणों का अपमान वह सहन नहीं कर सके।[2] जातिगत संस्कार उनमें भी पड़े हैं। इसी कारण आदर्श ब्राह्मणत्व पर बल देते हुए भी उन्होंने जन्मजात ब्राह्मण की सामाजिक उच्चता की स्पष्ट घोषणा की है।[3] तुलसी ने त्रेता-युगीन विभीषण के निवास-स्थान में तुलसी का पौधा लगवा दिया है।[4] इसी प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण हमें तुलसी की अपनी भावनाओं तथा देश-काल के अनुरूप 'मानस' में मिलते हैं।

देशकाल सम्बन्धी ऐसे दोष हमें प्राय सभी कवियों में दृष्टिगोचर होते हैं, कवि का अपने युग की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों तथा उसके अपने अनुभव हमें उसके काव्य में स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं। उस युग की परिस्थितियों को भली प्रकार से समझ सकने पर ही हम किसी कवि की रचना को अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं। युग के अनुसार हमें साहित्यिक कृतियों में भी भिन्नता दिखाई देती है। 'गोविन्द रामायण', 'रामचन्द्रिका', 'रामचरित मानस' आदि राम-कथाओं में हमें जो भिन्नता दिखाई देती है वह देश-काल का ही प्रभाव है। प्रत्येक साहित्यिक कृति पर व्यक्तिगत तथा देशकाल दोनों ही प्रकार की शक्तियां प्रभाव डालती हैं। 'गोविन्द-रामायण' में भी अपने युग से प्रभावित होकर गुरु गोविन्दसिंह जी ने तत्कालीन समाज का चित्रण किया है और अनेक नवीन कल्पनाओं का समावेश किया है। इस कारण देश तथा कालगत दोषों का आ जाना स्वाभाविक है।

१. रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृष्ठ ३७६-७८।
२. रामचरित मानस और साकेत, पृष्ठ ४।
३. वही, पृष्ठ ४।
४. रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ० ३७८।

(स) शैली

'गोविन्द रामायण' की शैली मे हमे गुरु गोविन्दसिह जी के व्यक्तित्व तथा तत्कालीन वातावरण की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। शैली मे रचनाकार का सम्पूर्ण व्यक्तित्व झलकता है, कही-कही तो प्रत्यक्ष रूप मे और कही-कही अप्रत्यक्ष रूप मे। इसीलिए तो कहा गया है कि 'शैली ही व्यक्तित्व है।'[1] कवि स्वानुभूतियों को सशक्त रूप मे प्रकट करने के लिए उनके अनुरूप भाषा, शब्द, छन्द-अलकार आदि का प्रयोग करता है। इन सब के सगठित रूप द्वारा वह पाठक को अपने रग मे रग लेता है। विभिन्न साहित्याचार्यों के अनुसार काव्य की आत्मा उसके भाव तथा विचार हैं और उसका शरीर उसकी शैली है।

अब हम 'गोविन्द-रामायण' की समीक्षा भाषा, छन्द-अलकार, रसादि की दृष्टि से करेंगे।

भाषा

भाषा भावाभिव्यक्ति का प्रधान साधन है। काव्य की उत्कृष्टता के लिए भावानुकूल भाषा तथा शब्दचयन अनिवार्य है। इसके अभाव मे काव्य की सुन्दरता पूर्ण निखार नही पा सकती। गुरु गोविन्दसिह जी के समय मे उत्तर-भारत की सर्वप्रचलित भाषा 'ब्रज' थी। यह पश्चिमी हिन्दी की समृद्ध-सशक्त एव मधुर भाषा थी जिसकी व्यापकता सारे भारतवर्ष मे हो गई थी।[2]

'गोविन्द-रामायण' की प्रधान भाषा ब्रज है। क्योंकि गुरु जी की अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम ब्रज-भाषा ही रही है यद्यपि उनका पजाबी, फारसी व ब्रज पर समान अधिकार था। 'गोविन्द-रामायण' मे सर्वत्र ब्रज-भाषा का प्रयोग तो है ही पर इसके साथ तात्कालिक प्रभाव के कारण फारसी, अरबी, पजाबी आदि शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। 'रावण-युद्ध' प्रसग मे एक ही छन्द मे ब्रज के साथ-साथ फारसी, पजाबी व गुजराती भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं —

"धाए महावीर साधे सितं तीर काढे रणं चीर बाना सुहाय।
खां कर्दं अरक़ब यलो तेज इम दाव चुं तुंद अजदहो उमिआ अंगाहे॥

---

1. काव्य के रूप : गुलाबराय, पृ० २३३।
2. गुरु गोविन्दसिंह और उनका काव्य, पृ० २६२।

मिड़ आए ईहां बुले बैन कोहां करें धाई जी हां मिड़े नेड़ भज्जे।
पियो पोस्ताने भछो रावड़ी ने कहा छं अनीरे घनो ने निहारे॥"

इसी प्रकार से पजाबी के शब्दों का प्रयोग यत्र-तत्र देखने को मिलता है; 'अयोध्या-आगमनम्' प्रकरण में—

"आकिल घरे उधावें,
म्हारे ढोलन कहां रे।"

'रावण-युद्ध' के ही एक अन्य छन्द में ब्रज, पजाबी, खड़ी व राजस्थानी का सुन्दर सगम देखिए :—

"गाजे महाशूर घुम्मी रणं हूर भरमो नभं पूर बेशं अनूपं।
बले बतल साईं जिवी जुग्गा ताईं तेंडे घोली जाईं अलावीत ऐसे॥
लगो लार थाने वरो राज माने कहो और काने हठो छांड भे से।
वरो आन मोको भजो आन तो को चलो देव-लोको तजो वेगि लंका॥"

गोस्वमी तुलसीदास जी के मानस की प्रधान भाषा यद्यपि 'अवधी' है परन्तु उन्होने भी विना किसी हिचकिचाहट के प्रान्तीय शब्दों का प्रयोग किया है। बुन्देलखडी, भोजपुरी, ब्रजभाषा, राजस्थानी आदि के साथ-साथ अरबी और फारसी के शब्द भी देखने को मिल जाते हैं।[1]

इसी प्रकार से केशव कृत 'रामचन्द्रिका' में भी हमें सस्कृत, बुन्देलखडी, अवधी तथा सीमित रूप से विदेशी शब्द (फारसी आदि) भी ब्रज-भाषा के साथ देखने को मिलते है।[2]

भाषा को बोधगम्य तथा हृदयग्राही बनाने के लिए गोविन्दसिंह जी, केशव तथा गोस्वामी तुलसीदास जी तीनो ने ही अपने-अपने ग्रन्थो में मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। 'गोविन्द रामायण' मे—

'रामावतार' प्रसंग —"फूल फूल फिरें सबै गणदेव देवनराय।"
'वन-प्रवेश' प्रसंग मे—"सो न बरें अति रोष भरी तब।
नाक कटाई गई गृह को सब॥"
'लंका गमन' प्रसग में—"भै दग्ग अदग्ग भगे हठी,
गहि-गहि कर दांतन तृणा।" आदि

---

१. रामचरित मानस और साकेत, पृ० १७२।
२. रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ० ८७-८८।

'रामचंद्रिका' मे—"दशमुख मुखजोयँ गजमुख मुख को ।"[1]

"जारति चित्त चिता दुचिताई ।"[2] आदि

इसी प्रकार से 'मानस' मे भी हमे लोकोक्तियो और मुहावरो का प्रयोग देखने को मिलता है—

"हृदय जुड़ाना" ;

"का बर्षा जब कृषि सुखानी" ;

"भई गति साँप छछूंदर केरी ।" आदि

काव्य-गुण यद्यपि रस की उत्कर्षता को अधिक करने वाले होते हैं परन्तु उनका सम्बन्ध शब्द-चयन तथा वाक्य-रचना से ही होता है । भाषा के तीन मुख्य गुण हैं—माधुर्य, ओज व प्रसाद ।[3] इनकी अभिव्यक्ति क्रमश मधुरा, परुषा एव प्रौढ़ा नामक शब्द-शक्तियो द्वारा होती है । 'गोविन्द-रामायण' मे यद्यपि 'वीर-रस' की प्रधानता होने के कारण 'ओज' गुण की प्रधानता है फिर भी अन्य गुणो का भी अभाव नही है । माधुर्य की स्थिति विशेषतया शृगार के सयोग तथा वियोग मे होती है । और प्रसाद-गुण के दर्शन भी कहीं-कही हो ही जाते हैं पर ओजता व वीरता की ही प्रधानता है ।

ओज की स्थिति वीर, वीभत्स तथा रौद्र रसो मे विशेष रूप से पाई जाती है । द्वित्व वर्ण, सयुक्त वर्ण, रकार, टकार तथा दीर्घ सामासिक पद ओज गुण के व्यजक है ।[4] वीर, रौद्र आदि रसो का वर्णन करते समय 'गोविन्द रामायण' की भाषा ओजमयी हो उठती है । 'सीता-स्वयवर' प्रसग मे परशुराम के आते ही युद्ध का प्रसग—

"भट हुंके धुंके बंकारे । रण बज्जे गज्जे नगारे ।

रण हुल्ल कल्लोल हुल्लास । दल हल्ल हल्ल उल्लासं ॥" आदि

ऐसे अनेक उदाहरण हमे प्रस्तुत-ग्रन्थ मे प्रत्येक युद्ध-वर्णन मे देखने को मिल जाते है ।

'रामचन्द्रिका' मे भी ऐसे ही उदाहरण धनुष-भग, परशुराम-राम सवाद

१. रामचन्द्रिका, ३।९ ।
२. वही, १४।४ ।
३. काव्य-प्रदीप, पृ० ६५ ।
४. काव्य-प्रदीप, पृ० ६६ ।

भिड़ आए ईहां बुले धैन कीहो करें धाई जी हां भिड़े भेड़ भज्जे।
पियो पोस्ताने भछो रावड़ी ने कहा छं अनीरे धनी ने निहारे॥"

इसी प्रकार से पंजाबी के शब्दो का प्रयोग यत्र-तत्र देखने को मिलता है, 'अयोध्या-आगमनम्' प्रकरण मे—

"आकिल खरे उधावं,
म्हारे ढोलन कहां रे।"

'रावण-युद्ध' के ही एक अन्य छन्द मे ब्रज, पंजाबी, खडी व राजस्थानी का सुन्दर सगम देखिए :—

"गाजे महाशूर घुम्मो रणं हूर भरगो नभं पूर वेशं अनूपं।
बले बलल साईं जिवो जुग्गा ताई तंडे घोळी जाई अलावीत ऐसे॥
लगी लार थाने वरो राज माने कहो और काने हठी छांड भे से।
वरो आन मोको भजो आन तो को चलो देव-लोको तजो वेगि लंका॥"

गोस्वमी तुलसीदास जी के मानस की प्रधान भाषा यद्यपि 'अवधी' है परन्तु उन्होने भी बिना किसी हिचकिचाहट के प्रान्तीय शब्दो का प्रयोग किया है। बुन्देलखडी, भोजपुरी, ब्रजभाषा, राजस्थानी आदि के साथ-साथ अरबी और फारसी के शब्द भी देखने को मिल जाते हैं।[1]

इसी प्रकार से केशव कृत 'रामचन्द्रिका' मे भी हमें संस्कृत, बुन्देलखडी, अवधी तथा सीमित रूप से विदेशी शब्द (फारसी आदि) भी ब्रज-भाषा के साथ देखने को मिलते हैं।[2]

भाषा को बोधगम्य तथा हृदयग्राही बनाने के लिए गोविन्द
केशव तथा गोस्वामी तुलसीदास जी तीनों ने ही अपने-अपने
तथा लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। 'गोविन्द रामाय

'रामावतार' प्रसंग—"फूल फूल फिरे सबै

'वन-प्रवेश' प्रसंग मे—"सो न धरें अति रोष भरी
नाक कटाई गई गृह को

'लंका गमन' प्रसंग मे—"भै दगा अदाग भगे
गहि-गहि कर दांतन

---

१. रामचरित मानस और साकेत, पृ० १०२।
२. रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ० ३

भाषा के प्रसाद-गुण का सम्बन्ध उसके अर्थ-बोध मे रहता है।[1] रचनाओं मे जहा अर्थ बिना अधिक बौद्धिक-परिश्रम किए समझ मे आ जाए वहा प्रसाद-गुण होता है। ओज तथा माधुर्य के समान इसकी स्थिति किसी विशेष रस मे न होकर सभी रसो मे होती है। 'गोविन्द रामायण' के कई स्थल इसके लिए हमे मिल जाते हैं जहाँ कवि ने उक्ति-वैचित्र्य न दिया सीधे-सादे शब्दों मे बात स्पष्ट कर दी है। 'अवध-प्रवेश' प्रसग मे राम-सीता से सीधे-सीधे घर पर रहने को कहते हैं—

सुन सिय सुभग सुजान, रहो कुशल्या तीर तुम।
राज करौं फिरि आन, तोहि सहित, बनवास बसि॥

इस प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण भी हमे 'गोविन्द रामायण' मे मिलते हैं। 'रामचरित मानस' तथा 'रामचन्द्रिका' मे भी ऐसे उदाहरण देखने को मिलते है जहा अर्थ करने मे कोई कठिनता नही होती।

अलंकार तथा छंद :

जिस प्रकार से अगूठी, हार आदि भूषण रमणी के शरीर की शोभा को द्विगुणित करते हैं वैसे ही कविता-कामिनी की शोभा को बढाते है।[2] काव्य के लिए अलकारो की उपयोगिता मात्र आभूषण जैसी ही नही अपितु यह काव्य की अभिव्यजनाशक्ति को भी सप्राण, सजीव और प्रभावोत्पादक कर देते है।[3] 'गोविन्द रामायण' मे हमे अलकार के भेदो व उपभेदो के उदाहरण मिलते हैं। शब्दालकारो का प्रयोग तो पग-पग पर हमे दिखाई देता है—

"निनद्द नद्द नाफिरं बजन्त भेरि भीषण"

मे 'न' तथा 'भ' अक्षर की आवृत्ति है, । यह अनुप्रास का सुन्दर उदाहरण है। अर्थालकारोमे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि के उदाहरण मिलते हैं परन्तु अधिकतर गोविन्द रामायण' मे 'अतिशयोक्ति' के उदाहरण देखने को मिलते हैं। कवि ने 'युद्ध, शृगार, वीर, रौद्र आदि के प्रसगो मे अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पनाए की है। राम की विरह की अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पना 'सीता खोज' प्रकरण मे दर्शनीय है—

१. काव्य-प्रदीप, पृ० ६७।
२. काव्य-प्रदीपिका : डॉ० भोलाशकर व्यास, पृ० १।
३. गुरु गोविन्दसिंह और उनका काव्य, पृ० २७२।

"उटकं पुनि प्रात सनान गए, जल-अंत सबै जरि छार भए।
विरहो जिन ओर मुहूदि परं, फल फूल पलास अकास जरं।
कर सों पर जौन छुअंत भई, कच बासन ज्यों पक फूट गई।
तन रापर भेंट समीर जरी, तज धीर सरोवर मांस डुरी।"

'रामचन्द्रिका' तथा रामचरितमानस मे भी अलंकारो के भेदों-उपभेदों के उदाहरण हमें मिलते हैं। रामचन्द्रिका में केशव ने अलकार-सम्बन्धी अपनी सभी मान्यताओं का सफल तथा सम्यक् प्रतिपादन किया है।[1] 'रामचरितमानस' मे भी अलकारो का स्वाभाविक प्रयोग किया गया है।[2]

अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रा-गणना तथा यति-गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमो से नियोजित पद्य-रचना छन्द कहलाती है।[3] छन्द के दो मुख्य भेद होते हैं—वर्ण वृत–जिस छन्द के पदों में वर्णों की सख्या का नियमन रहता है। मात्रिक छन्द मे मात्राओं का नियमन रहता है।[4]

'गोविन्द-रामायण' मे दोनो प्रकार के छन्दो का प्रयोग कवि ने किया है इसमे उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। 'गोविन्द-रामायण' मे जो छन्द प्रयुक्त किए गए हैं उनकी संख्या इस प्रकार से हैं :—

छन्द	संख्या
चौपाई	५६
तोटक	२७
तिलका	८
पद्धरि (पधड़ी)	१६
चौबोला	३
अनूप नाराच	३९
नाराच	१६
अर्द्ध नाराच	१०
त्रिभंगी	६

१. रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ० ४४२।
२. रामचरित मानस और साकेत, पृ० १६५-६६।
३. हिन्दी-साहित्य कोष : डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० २१०।
४. काव्य-प्रदीप, पृ० २४३।

रूआमल	४४
मवरा	१४
ग्गावल	७७
वल्रस	९
भुजग-प्रयान	६८
मगीन भुजग-प्रयार	१३
भिन्न तुरा भुजग प्रयान	८
गुन्दरी	१०
मधुर धुनि	११
चरपट छीगा के आद वृत	८
सवैया	४१
अलरा	६
कवित्त	११
दोधक	२
मोदक	१०
चाचरी	६
गमानिका	८
सरस्वती	१६
नग सरूपी	४
अर्द्ध-नग सरूपी	५
सुखदा	८
सुन्दरी	८
तारक	८
मनोहर	१६
गीत मालती	८
छप्पय	१०
उटकन	१०
सगीन छप्पय	८
विराज	४
मोहिनी	८

नव छन्द	६
तिलकडिया	६
सवैया बहुतुका	१
उगाध	१३
उगाथा	६
दोहा	३०
सोरठा	३
विर्ज	१
अपूर्व	२६
कुसुमविचित्रा	८
झूला	४
झूलना	४
अकरा	८
अरूपा	४
सिरखडी (श्रीखड)	४
पाधडी	१२
होहा	१४
अजबा	१६
पाधरी	११
सगीत पधिष्टका	८
त्रिणनन	८
त्रिगता	१०
अनाद	८
बहड	६
अमृतगति	३
अनका	१६
अहूटा	१४
बहोड़ा	४

इस प्रकार से विभिन्न छन्दों का प्रयोग देख 'गोविन्द रामायण' को हम रामचन्द्रिका के साथ रख सकते हैं। उसमें भी इसी प्रकार से विभिन्न छन्दों का

प्रयोग किया गया है। गुरु गोविन्दसिंह द्वारा प्रयुक्त छन्दो मे से कुछ का प्रयोग तो आजकल बहुत ही कम हो गया है। 'रामचरित मानस' मे गोस्वामी जी ने दोहा-चौपाई शैली को अपनाया है और बीच-बीच मे सवैये व सोरठे आदि छन्दो का प्रयोग किया है परन्तु 'गोविन्द रामायण' तथा 'रामचन्द्रिका' में हमे छन्दो के प्रयोग मे विभिन्नता दिखाई देती है। 'रामचन्द्रिका' के छन्दो के बारे मे तो विद्वानो ने कहा है कि यह छन्द की दृष्टि से पिंगल का ग्रन्थ दिखाई देता है, यही बात हम 'गोविन्द रामायण' के विषय मे भी कह सकते है। गोविन्द रामायण मे छन्द-परिवर्तन के कारण उसके कथा-प्रवाह मे कोई बाधा नही पडती अपितु नित नवीन छन्दो के कारण एक नवीन रस-उत्साह छलकता रहता है। गुरु गोविन्दसिंह को जहा एक ही छन्द मे कोई विशेष भाव व्यक्त करने की आवश्यकता अनुभव हुई है, उन स्थलो पर उन्होंने एक ही छन्द का कई बार प्रयोग किया है।

रस

भारतीय विद्वानो ने काव्य मे 'रस' की आवश्यकता पर यथेष्ट प्रकाश डाला है। सर्वप्रथम भरत मुनि ने अपने 'नाट्य-शास्त्र' मे रस-तत्व को प्रमुखता प्रदान की और इसके बाद रसयुक्त वाक्य को ही काव्य की सज्ञा दी गई।[1] भारतीय दृष्टि के अनुसार रस, काव्य की आत्मा है।

गुरु गोविन्दसिंह के समय मे रीति-काल अपने वैभव पर था। चारो ओर शृगार रस की ही प्रधानता थी। परन्तु गुरु गोविन्दसिंह के साहित्य मे हमे वीर-रस की प्रधानता मिलती है। अन्य रसो का भी उल्लेख आपके साहित्य मे गौण रूप से मिलता है।

'गोविन्द रामायण' मे वीर-रस ही प्रधान है। अन्य रस उसके सहायक के रूप में वर्णित हैं। [illegible] मे ऐसे अनेक स्थल हैं जहा युद्ध-वर्णन के प्रसग [illegible] स्पष्ट [illegible] है। विश्वामित्र के साथ तपोवन मे [illegible] से युद्ध प्रसग वीरता की भावना

[illegible] रद्र तारो ॥

[illegible] विश्वनाथ।

बजे घंट भेरी । रहे राम डेरी ॥
रणं को निशानं । कंपा देखि कानं ॥"

इसके अतिरिक्त 'सीता-स्वयवर' प्रसग मे परशुराम-राम संवाद और वन में लक्ष्मण तथा राम की वीरता का वर्णन सभी वीर-भावनाओ से ओतप्रोत है। 'इन्द्रजीत युद्ध' प्रसंग से एक दृश्य देखिए—

"बज्जे संग लियाले हाठा जुट्टियाँ ।
खेत घहे मुच्छाले कहर तताचे ॥
डिग्गे वीर जुझारे हूगां फुट्टियां ।
थके जानु मतवाले भगां पीइकै ॥"

वीर रस के साथ वीभत्स-रस का भी सफल चित्रण 'गोविन्द रामायण' में हमें मिलता है । वनवास के राम-विराध युद्ध-प्रसग मे कवि द्वारा वीभत्स की सफल अभिव्यंजना हुई है—

"पिवंत स्रोण खप्परी भखंत मास बावरं ।
हुंकार वीर संभिड़ें सुधार धार दुधरं ॥
पुकार मार कं पर सहंत अंग भारथं ।
विहार देव संदर्भ कंदत राग धारथं ॥"

'गोविन्द रामायण' के कुम्भकरण के अतिरिक्त चित्रण मे हास्य तथा अद्भुत रस के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं । इन रसों के अतिरिक्त तत्कालीन प्रसार एवं शृंगार का वर्णन भी हमें 'गोविन्द रामायण' मे देखने को मिलता है ।

'सीता-स्वयवर' प्रसग मे जब राम ने सीता का वरण कर लिया उस समय सीता की रूप-छटा का वर्णन देखने योग्य है—

"छके प्रेम दोनों लगे नैन ऐसे,
मनो फांद फांदे मृगीराज जैसे ।
बिथे बाक बैनो कहे नैन ठोरे,
रगे रंग रामं, सुरंगे अबोले ॥"

इसी प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण हमें 'गोविन्द रामायण' में मिलते हैं । शृंगार रस के वियोग पक्ष के सुन्दर उदाहरण भी देखने को मिलते हैं । [illegible] विरह की सम्पूर्ण [illegible] 'गोविन्द रामायण' [illegible] राम की विरह दशा का चित्रण—

"उठि ठाढ़ भए पुनि भूम गिरे। पहरेकक लौं फिर प्राण फिरे।
तन चेन सुचेन उठे हरि यों। रण-मंडल मध्य गिर्‌यो भट ज्यों।"

प्रकृति के विविध उपादान जो संयोग में आनन्ददायक और उल्लासपूर्ण प्रतीत होते हैं वे ही अपना वियोग में विपरीत प्रभाव डालते है, 'सीता-खोज' प्रसंग में ही—

"विरही जिस ओर सुदृष्टि परं। फल फूल पलास अकास जरं॥
कर सौं धर जौन छुअंत भई। कच आसन ज्यों पक फूट गई॥"

विरह का यह अत्युक्तिपूर्ण वर्णन विप्रलम्भ-भाव की तीव्रता प्रदर्शित करता है। वात्सल्य रस के संयोग तथा वियोग दोनो पक्षो का वर्णन हमे 'गोविन्द रामायण' मे मिलता है।

'रामचरित मानस' मे भी इसी प्रकार से सभी रसो का सुन्दर वर्णन हमे मिलता है। पुष्पवाटिका मे राम-सीता का मिलन संयोग-शृगार, रावण द्वारा सीता-हरण के अवसर पर राम व सीता का वियोग, करुण-रस तो कई स्थानों पर 'मानस' मे दिखाई देता है। राम के अयोध्या-त्याग के समय उनके वियोग से समस्त जड-चेतन दुःखी दिखाया गया है—

"चलतराम लखि अवध अनाथा।
विकल लोग सब लागे साथा॥
घोर जन्तु सम पुर-नर-नारी।
डरपहिं एकहि एक निहारी॥
बागन बिटप बेलि कुम्हिलाहीं।
सरित सरोवर देखि न जाहीं॥"[1]

इसी प्रकार से अन्य रसो का भी वर्णन प्रस्तुत ग्रन्थ मे मिलता है, शान्त रस 'मानस' मे अत्यन्त व्यापक व विस्तृत है। सम्पूर्ण ग्रन्थ मे इसकी प्रधानता है।

'रामचन्द्रिका' मे प्रधान रस 'वीर' है और उसकी व्याप्ति भी काव्य के आदि से अन्त तक हुई है।[2] वीर के सहकारी के रूप मे शान्त तथा शृगार-रसो को लाया गया है। रामचन्द्रिका के लव-कुश बालक होने पर भी वीर-रस से पगे हैं—

---

१. रामचरित मानस, अयोध्या कांड, दोहा सख्या ८३।
२. रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ० ३५१।

"रिपुहि मारी संहारि दल यमते लेहुँ छँडाय।
लाघहि सिंधु हौ देनिहौ नाना तेरे पाय॥"[1]

इस प्रकार से रामचन्द्रिका में सभी रसों की योजना होने पर भी वीर उसका अंगीरस है तथा शेष रस उसके अंग।

तुलसी भक्त-कवि थे इसी से उनके 'मानस' में शांत-रस की प्रधानता है। इसके विपरीत केशव दरबारी कवि थे और इसी से वीरता की भावना का निरूपण अच्छा कर सके और गुरु गोविन्दसिंह तो वीरता के अवतार थे ही। उनके सम्पूर्ण साहित्य में वीर-रस प्रमुख है। अतः गोविन्द रामायण में भी वही रस अधिक स्पष्ट रूप से उभर सका है।

(द) उद्देश्य

प्रबन्ध काव्य के उद्देश्य के सम्बन्ध मे प्रायः सभी साहित्य-शास्त्री एकमत हैं कि वह महान् होना चाहिए। आचार्य दण्डी ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति को काव्य का लक्ष्य बनाया है। रुद्रट के अनुसार भी चतुर्वर्ग से युक्त काव्य महान् होता है एवं आचार्य विश्वनाथ ने चारों मे से एक की स्थिति अनिवार्य मानी है।

'गोविन्द रामायण' मे गुरु गोविन्दसिंह जी ने राम के चरित्र का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। राम का जीवन मानव-जीवन का आदर्श है। अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध राम ने तलवार उठाई और उस पर विजय प्राप्त की। श्री गुरु जी के समय में औरंगजेब दिल्लीश्वर था, उसके अत्याचारो से हिन्दू-जनता त्रस्त थी, गुरु गोविन्दसिंह जी ने नैराश्य के गर्त मे पड़ी हिन्दू-जाति का पुनः संगठन कर मुगल अधिकारियो के अमानुषिक अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई। न्यायोचित-धर्म और कर्म की भावना को जागृत किया व प्राचीन गौरव-गान कर उन्ही चरित्रो के अनुरूप अपने शिष्यो को बनाया। गुरु जी ने हिन्दुओ की शिथिल शिराओं मे शौर्य का रक्त प्रवाहित कर उनमे अपमान का बदला लेने की भावना को जगाया।

राम का महत्व उस समय तक चरम उत्कर्ष को प्राप्त हो चुका था 'रामचरितमानस' द्वारा राम की भक्ति-भावना चहुं ओर फैली हुई थी, 'राम-

---

१. रामचन्द्रिका ३५।२६।

चन्द्रिका' भी समाज-हित का उद्देश्य ले सामने आ चुकी थी और जनता को अत्याचार के विरुद्ध उठाने का कार्य 'गोविन्द रामायण' ने पूर्ण कर दिया।

तुलसी, केशव तथा गुरु गोविन्द तीनों का उद्देश्य समान था परन्तु उद्देश्य-प्राप्ति का मार्ग भिन्न। तुलसी में उपदेश-प्रधान, केशव में तर्क की प्रधानता तथा गुरु गोविन्दसिंह ने सीधी बात का वर्णन कर जनता को अत्याचार के विरुद्ध तथा लोक सुधार किया।

षष्ठ प्रकरण

गोविन्द रामायण का महत्त्व

"राम कथा जुग जुग अटल।
सब कोई भाखत नेत ।
सुरग बास रघुबर करा ।
सगरी पुरी समेत ॥"[1]

इस युग-युगान्तर तक अटल रहने वाली कथा का गान 'गोविन्द रामायन' में किया गया है। इस कथा के नायक 'राम' का चरित्र भारतीय संस्कृति का समष्टि-रूप है। इस महापुरुष का चरित्र युगों से जातीय-जीवन का प्रधान प्रेरणा-केन्द्र रहा है, राम के चरित्र में हमें शील-शक्ति व सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। इसी कारण तो 'अवध-प्रवेश' प्रसंग में गुरु गोविन्दसिंह ने कहा है :—

"जो इह कथा सुनै अरु गावै ।
दुख पाप तिह निकट न आवै ॥
बिष्णु भक्ति कीए फल होई ।
आधि व्याधि छ्वै सकै न कोई ॥"

जैसा कि हम पहले ही यह जान चुके हैं कि मानव-समाज को उठाने में ही हमें गुरु जी की वास्तविक महत्ता के दर्शन होते हैं। नि:स्वार्थपूर्ण जीवन व्यतीत करने का कठोर आदर्श उनके सामने था। आपने अपनी शिष्य-परम्परा में जाति को उन्नति की ओर ले जाने वाले पुरुषों की सृष्टि की। उनमें दृढ़-उत्साह, अथक-धैर्य भरा।

'गोविन्द रामायण' के राम में हमें गुरु गोविन्दसिंह जी के दर्शन होते हैं। गुरु गोविन्द ने अपनी आत्म-कथा विचित्र नाटक में[2] अपने को 'राम' की

---

१. अवध-प्रवेश, गोविन्द रामायण।
२. विचित्र नाटक, द्वितीय अध्याय।

वंश परम्परा मे बताया है। इससे उनकी काव्य-कृतियो मे 'गोविन्द रामायण' का महत्त्व और भी अधिक हो जाता है।

राम की वंश-परम्परा मे होने के कारण समस्त हिन्दू-जाति मे आदर व श्रद्धा का स्थान गुरु गोविन्द को प्राप्त हुआ और इसके साथ गुरु जी के युद्ध धर्मयुद्ध थे, ठीक वैसे ही जैसे राक्षसो के अत्याचारो से दुखित मुनियो की रक्षा का बीडा 'राम' ने उठाया था, वैसे ही हिन्दुओ को मुगल-सत्ता के अत्याचारो से बचाने के लिए गुरु जी ने तलवार उठाई।

'गोविन्द रामायण' के राम अपने कर्तव्य के प्रति सचेत हैं, इससे गुरु जी ने अपनी शिष्य-परम्परा मे सदैव सचेत रहने का सन्देश दिया। आदर्श हिन्दुत्व भावना की पूर्णरूपेण रक्षा की। श्री गुरु महाराज ने हिन्दुओं की सुप्त भावनाओं को जगाने के लिए पतित पावन श्री राम का ही चरित्र लिया है और उन्हे विशेषकर दुष्ट-दल-दलक के रूप मे चित्रित किया है। इसी कारण से प्रस्तुत ग्रन्थ मे जहा कही किसी राक्षस से युद्ध का वर्णन आया है वहां पर सजीव वर्णन बन पडा है। प्रत्येक स्थान पर असुरी भावनाओ पर दैवी भावनाओं की विजय 'गोविन्द रामायण' मे दिखाई गई है। सोई हुई भारतीयता को जगाने का कार्य गुरु गोविन्दसिंह जी ने किया, इसीलिए उन्होने 'राम' के चरित्र को अपना माध्यम बनाया है।

आज जो सिक्ख-हिन्दू मे यह भावना है कि दोनो विभिन्न धर्मों के मतावलम्बी हैं उनके विरुद्ध 'गोविन्द रामायण' यह सकेत करती है कि सिक्ख-धर्म हिन्दू-धर्म और हिन्दुत्व मे कोई अन्तर नही है। सिक्ख-धर्म हिन्दू-धर्म का ही एक अग है और अगो का कार्य सदैव अगी (हिन्दुत्व) की रक्षा करना है। सिक्ख पथ का मूल मत्र —

"एक ओं सतनाम कर्ता पुरख निर्भो निर्वैर।
अकाल मूरत अजोनी सैभं गुरु प्रसाद जप।
आदि जगादि सच है भी सच। नानक होसी भी सच। वाह गुरु॥"

...श्वर है, उसका नाम सत्य है, वह कर्ता है। वह भय और
..., वह अमर है, अजन्मा, निराकार और स्वयंभू
... प्राप्ति हो सकती है। वह ससार की सृष्टि
... वह इस समय वर्तमान है और नानक कहते
...ा।"

सहजो हिन्दू चेतना का निचोड़ है।[1] श्री रामधारी सिंह दिनकर जी सिक्ख-धर्म को हिन्दुत्व की धार मानते हैं।[2] सिक्ख-हिन्दू-एकता पर रामधारीसिंह जी के निम्न शब्द दर्शनीय हैं :—

'सिक्ख-धर्म और हिन्दुत्व, ये दो नहीं एक ही धर्म हैं। हिन्दुत्व का स्वभाव है कि उस पर जब कोई विपत्ति आती है तब वह पंथ ही रूप अपने भीतर से प्रकट करता है। इस्लामी हमलों से बचने के लिए अथवा उनका उत्तर देने के लिए, हिन्दुत्व ने इस्लाम के अखाड़े में अपना जो रूप प्रकट किया, वही सिक्ख या खालसा-धर्म है। सिक्ख-गुरुओं ने हिन्दू-धर्म की रक्षा और सेवा के लिए अपनी गरदनें कटायीं, अपने जीवन का बलिदान किया तथा उन्होंने अपना जो सैनिक संगठन खड़ा किया, उसका लक्ष्य भी हिन्दू-धर्म को जीवित एवं जागरूक रखना था।'[3]

दिनकर जी के उपर्युक्त विचार श्री सैयद अब्दुल कादिर के विचारों[4] का उचित उत्तर है।

इसी परिप्रेक्ष में 'गोविन्द रामायण' का महत्व और भी अधिक हो जाता है। ग्रन्थ की भूमिका में श्री ओ३म प्रकाश आनन्द जी के शब्द देखिए :—

"मेरे विचार में यह पुस्तक अंगी और अंग को मिलाने वाली एक लड़ी है।" (पृष्ठ ३८)

अन्ततः हम कह सकते हैं कि 'गोविन्द रामायण' का रामकाव्य में नवीन रूप से योगदान है। गोविन्द रामायण के रचयिता की बुद्धि-प्रखरता युद्ध दृश्यों के वर्णन में निखर उठती है, राम-काव्य होते हुए भी इसमें कवि का लक्ष्य राम के वीर रूप की ओर अधिक रहा है।[5]

---

१. विश्व-धर्म दर्शन, श्री सांवलिया बिहारीलाल वर्मा, पृष्ठ ३१७।

२. संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ ३२०।

३. संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ ३२६।

४. श्री कादिर ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ़ सिक्खस' में यह विचार रखे हैं कि हिन्दुत्व तथा सिक्ख-धर्म अलग है और वैमनस्यपूर्ण सम्बन्ध तथा एक दूसरे को जान लेने पर उतारू हैं। पृष्ठ, १४-२६।

५. संत-साहित्य, पृष्ठ १८८।

भारतवर्ष के राष्ट्रीय-जीवन के निर्माण में 'राम-कथा' का बहुत बड़ा योगदान रहा है, राम-राज्य शब्द पवित्र एवं आदर्श-राज्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है और इसी पवित्रता एवं आदर्श की शृंखला की एक कड़ी 'गोविन्द रामायण' भी है।

उपसंहार

दशम गुरु श्री गुरु गोविन्दसिंह जी थे। उनके व्यक्तित्व में हमें महा धार्मिक-नेता, राजनीतिज्ञ तथा कवि इन तीन रूपों के दर्शन होते हैं। आपका समय सन् १६६६–१७०८ रीति-काल का उत्कृष्ट युग था, कवि रीतिबद्ध रचना मे, नायिकाओं के नख-शिख वर्णन मे लगे थे और उधर धर्मान्ध औरंगजेब के अत्याचारों से त्रस्त हिन्दू-जनता आत्म-विश्वास तथा आत्म-गौरव खो चुकी थी। ऐसे समय मे भारतीयता की रक्षा के लिए दक्षिण में छत्रपति शिवाजी तथा पजाब में गुरु गोविन्दसिंह आगे बढ़े। हिन्दी के रीति-युगीन काव्य में जैसे भूषण की कविता एक अलग व्यक्तित्व रखती है, गुरु गोविन्दसिंह जी की कविता में भी हमें वैसे ही उज्ज्वल मंत्र मिलते है।

गुरु गोविन्दसिंह प्रभु की 'शक्ति' को अधिक महत्व देते थे। गुरु नानक देव जी के 'निरकार पुरख' का नाम आपने 'असि ध्वज', 'महाकाल' तथा 'महालौह' रखे। 'गोविन्द रामायण' के 'अवध-प्रवेश' प्रसग मे आपने ईश्वर के वीर-रूप की वन्दना इस प्रकार से की है—

"पांय गहे जबते तबते कोउ आंख तरे नहिं आन्यों।
राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहैं मत एक न मान्यों॥
सिम्रति शास्तर वेद सबै बहु भेद कहैं हम एक न जान्यों।
श्री असपान कृपा तुमरी करि मैं न कह्यौं सब तोहि बखान्यों॥"

आज जो एक साम्प्रदायिक भावना हमे देखने को मिलती है, इसका कारण आंगल-राज्य के समय राजसत्ताधारियों की फूट-नीति का परिणाम है। एक माँ जाये दो पुत्रों को अलग कर—एक विद्वेष की भावना भड़का, दूर से तमाशा देखना ही उनका कार्य था। सिख-धर्म—हिन्दुत्व से कोई अलग सम्प्रदाय नहीं

सहायक-ग्रन्थ

हिन्दी :

१. राम कथा (उत्पत्ति और विकास) रेवरेंड फ़ादर कामिल बुल्के, सन् १९६२, हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय।

२. संत साहित्य . डॉ० सुदर्शनसिंह मजीठिया, सन् १९६२, रूप कमल प्रकाशन, दिल्ली।

३. गुरु गोविन्दसिंह और उनका काव्य . डॉ० (कु०) प्रसिन्नी सहगल, सन् १९६५, हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ।

४. गुरु गोविन्दसिंह कृत विचित्र नाटक टीकाकार डॉ० लाजवती रामकृष्ण, सन् १९६१, न्यू लिटरेचर, नई दिल्ली।

५. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा, सन् १९६४।

६. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, परिवर्द्धित संस्करण।

७. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास · श्री रामबहोरी शुक्ल तथा डॉ० भगीरथ मिश्र।

८. उत्तरी भारत की संत परम्परा · पं० परशुराम चतुर्वेदी, सं० २००८ वि०।

९. हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन : डॉ० रामकुमार वर्मा।

१०. नानक वाणी : डॉ० जयदेव मिश्र।

११. आज का भारतीय साहित्य : प्रकाशक, साहित्य अकादमी।

१२. हिन्दी सूर और नानक · श्री श्यामबिहारी विरागी तथा श्री अविनाशचन्द्र।

१३. हिन्दी भाषा तथा साहित्य : श्री उदयनारायण तिवारी।

१४. हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति : श्री विजयेन्द्र स्नातक तथा श्री

३४. रामचरित मानस का काव्य शास्त्रीय अनुशीलन : डॉ० राजकुमार पांडेय।
३५. रामभक्ति शाखा : डा० रामनिरंजन पांडेय ।
३६. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।
३७. तुलसीदास : चन्द्रबली पांडे ।
३८. तुलसी साहित्य की भूमिका : डा० रामरतन भटनागर, सन् १९५८ ई०।
३९. गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस : प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर।
४०. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास : डॉ० भगीरथ मिश्र, सं० २००५ वि०।
४१. वाङमय विमर्श, प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, सं० २००५। वि०।
४२. काव्य-प्रदीप : श्री रामबहोरी शुक्ल, हिन्दी भवन, अनारकली, लाहौर।
४३. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो . सम्पादक डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सन् १९५२ ई० ।
४४ सेनापति कृत कवित्त रत्नाकर . सम्पादक उमाशंकर शुक्ल ।
४५. संक्षिप्त रामचन्द्रिका : सम्पादक श्री जगन्नाथ तिवारी ।

अंग्रेजी

१. हिस्ट्री ऑफ दि सिक्खस् : डॉ० जे० डी० कनिंघम, सन् १९५५ ई० ।
२. ए ब्रीफ एकाउन्ट ऑफ दि सिक्ख पीपुल। श्री गंडासिंह, सन् १९५९ ई०, दि सिक्ख कलचरल सेंन्टर, कलकत्ता।
३. इवोल्यूशन ऑफ दि खालसा (भाग दो) : डा० इन्दुभूषण बनर्जी, सन् १९३६ ई० ।
४. ए शोर्ट हिस्ट्री ऑफ दि सिक्खस (भाग एक)। श्री तेजासिंह तथा श्री गंडासिंह, सन् १९५० ई०; ओरियंटल लागमैन लि०, बम्बई ।
५. हिस्ट्री ऑफ पंजाबी लिटरेचर, डा० मोहनसिंह दीवाना, सन् १९३२।
६. बर्थ ऑफ खालसा : श्री तारन सिंह, सिक्ख रिफेन्स लायब्रेरी, अमृतसर से प्राप्त ।
७. ए हिस्ट्री ऑफ दि सिक्खस् : श्री सैयद अब्दुल कादिर, सिक्ख रिफेंस लायब्रेरी अमृतसर से प्राप्त ।
८. गुरु गोविन्दसिंह : श्री ज्ञानसिंह, सिक्ख रिफेंस लायब्रेरी अमृतसर से प्राप्त।

९. हिस्ट्री एंड फिलासफी ऑफ सिक्ख रेलिजन : श्री खजानसिंह, सिक्ख रिफ्रेन्स लाइब्रेरी अमृतसर से प्राप्त ।
१०. गुरु गोविन्दसिंह । श्री लक्ष्मणसिंह, सिक्ख रिफ्रेन्स लायब्रेरी अमृतसर से प्राप्त ।
११. दि रेलिजन ऑफ दि सिक्ख गुरुस् : श्री तेजासिंह, सन् १९६३ ई०, दि शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर ।
१२. दि पोयट्री ऑफ दसम ग्रन्थ डॉ० धर्मपाल आश्ता, सन् १९५९ ई० ।
१३. हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब डा० जे० एन० सरकार ।
१४. ट्रांसफार्मेशन ऑफ सिक्खिज्म । डॉ० गोकुलचन्द नारंग, सन् १९४६ ।
१५. दि सिक्ख रिलिजन, (भाग ५) एम० ए० मैकालिफ, सन् १९०९ ई० ।
१६. हिस्ट्री ऑफ पंजाब लतीफ ।
१७. दि अपलिफ्ट ऑफ ह्यूमैनिटी डॉ० जगवन्त सिंह, सन् १९५१ ई० ।

पंजाबी :

१. गुरु गोविन्दसिंह कृत आकाल स्तुति प्रकाशक शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर ।
२. गुरु गोविन्द सिंह कृत चंडी दी वार . सम्पादक प्रो० प्रमिन्द्रसिंह तथा श्री करपालसिंह कसैल ।
३. गुरु गोविन्दसिंह कृत जाप जी साहब प्रकाशक शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर ।
४. गुरु गोविन्दसिंह कृत विचित्र नाटक । प्रकाशक शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर ।
५. गुर विलास : भाई सुक्खासिंह ।
६. सूरज प्रकाश . भाई सन्तोखसिंह ।
७. श्री दसमेश चमत्कार . भाई बूटासिंह, सन् १९५५ ई० ।
८. जीवन कथा श्री गुरु गोविन्दसिंह जी प्रो० करतारसिंह, सन् १९४६ ई० ।
९. शब्द मूरत : श्री रणधीरसिंह, स० २०१२ वि० ।

उर्दू :

१. गुरु गोविन्द सिंह कृत जफरनामा सम्पादक श्री मानकचन्द 'नाज' ।

पत्र-पत्रिकाएं :

१. 'कल्याण' (सत अंक) । प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर ।
२. 'धर्मयुग' (साप्ताहिक), अक १४, अप्रैल, १९६३ तथा २ जनवरी, १९६६
३. 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', अक २२ दिसम्बर, १९६३ ।
४. 'भवनस् जनरल', अक १२ अप्रैल, १९६४ ।
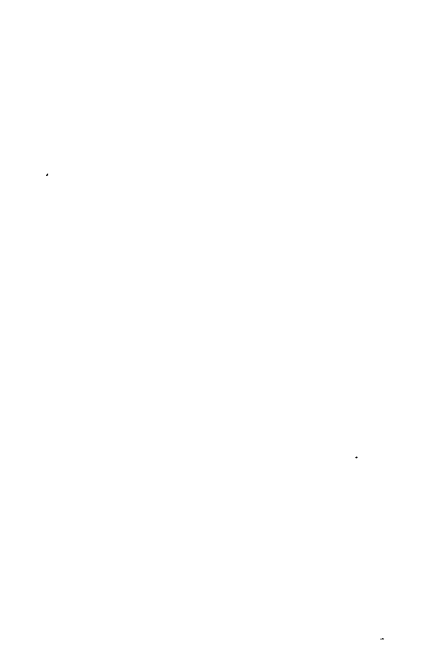
आधुनिकता और भारतीय परम्परा
लेखक : डॉ० महावीर दाधीच

शब्दलेखा प्रकाशन
5, डागा बिल्डिंग,
बीकानेर
द्वारा प्रकाशित

मूल्य : पाँच रुपये

मुद्रक
नवीन प्रेस, दिल्ली-6

प्राक्कथन

यह पुस्तक समय-समय पर लिखे गए निबन्धों का संग्रह है। इसलिए ामे अनेकविधता के साथ-साथ अनेकरूपता भी है।

मैं 'वातायन' और 'बिन्दु' के सम्पादकों का आभारी हूँ, जिन्होंने इन्हें ा रूप मे प्रकाशित करने की अनुमति दी है।

—महावीर दाधीच